उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत (कठो० १।६।१४)
(उठो, जागो और शिष्ट लोगों के पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो।)

कठोपनिषद्

(मन्त्रों के पदच्छेद, अन्वय, शाङ्करभाष्य, संस्कृत व्याख्या,
हिन्दी शब्दार्थ, हिन्दी भावार्थ, अंग्रेजी अनुवाद सहित)

व्याख्याकार
डॉ० रामरङ्ग शर्मा
एम. ए. (संस्कृत-हिन्दी), पी. एच-डी, साहित्याचार्य,
साहित्यरत्न
संस्कृत विभागाध्यक्ष
डी ए. वी. डिग्री कॉलेज, वाराणसी

तथा

मालती शर्मा
एम. ए., साहित्याचार्य
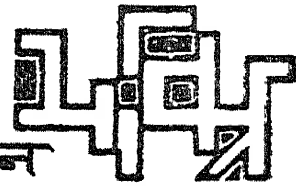
वाराणसी दिल्ली

KATHOPANISHAD

with

SHANKARA-BHASHYA

(Edited with Sanskrit, Hindi and English Commentaries)

By

Dr. Ram Rang Sharma

Head of the Sanskrit Department

D. A. V. Degree College.

Varanasi

&

Malati Sharma

BHARATIYA VIDYA PRAKASHAN

Varanasi, Delhi

समर्पणम्

त्यागमूर्त्ति-महामण्डलेश्वर

अनन्तगुणविभूषित

परमश्रद्धेय श्री स्वामी गणेशानन्दगिरि

महाराज

कनखल (हरिद्वार)

के

चरणकमलों में सादर समर्पित

रामरङ्ग शर्मा

एवं

मालती शर्मा

रथयात्रा

वि० सं० २०३६

दो शब्द

वेदो के रूप में गूंजने वाली ऋषियो की वाणी का मंगलमय स्वर चाहे इस रती के साधारण जनो के लिए बोधगम्य न हो, परन्तु जन्म से मृत्यु पर्यन्त ाम रहनेवाले महत्त्वपूर्ण हमारे षोडश सस्कारों ने हमें एक सूत्र में आज भी ंध रखा है। यही कारण है कि भारतीय जन-जीवन अतीत से भविष्य तक, ूल से सूक्ष्म तथा अनादि से अनन्त तक दृष्टि रखकर ही अपनी व्यवस्था करने प्रवृत्त होता है। फलत: सच्चा भारतीय सदा अनात्मवाद से आत्मवाद, ोगवाद से योगवाद, स्वार्थवाद से परमार्थवाद, नास्तिकवाद से आस्तिकवाद एव कुचित सम्प्रदायवाद से सदा मानवतावाद को अधिक महत्त्व देता रहा है। इस ढ़ आस्था की पृष्ठभूमि का श्रेय एवं गौरव नि:सन्देह उपनिषद्-वाड्मय को ही या जा सकता है, क्योंकि इनके गम्भीर अनुशीलन से ही भगवान् शङ्कराचार्य, ामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य आदि विभूतियों ने आकुल ानव जाति को सान्त्वना दी।

आज सर्वत्र नैतिकता का ह्रास हो रहा है। सभी लोग भौतिकवाद की काचौंध में चक्कर काट रहे हैं। आशा एवं विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के ायक नचिकेता के उदारचरित से देश के वर्त्तमान कर्णधार एवं राष्ट्र के होनहार वक शिक्षा लेंगे। यदि ऐसा हो सका तो हम अपने परिश्रम को सफल मानेगे।

पुस्तक-प्रकाशन मे पूरी सावधानी बरती गयी है तथापि पूर्ण निर्दोषता का ावा नही किया जा सकता। प्रूफ, मुद्रण आदि की असावधानियो से भी त्रुटियाँ म्भव है। सहयोगी सभी लेखक विद्वानो के हम आभारी है जिनकी कृतियो से मे सहायता मिली है। सुविज्ञ पाठको से हमारा अनुरोध है कि वे हमारी िषयगत तथा अन्य भूलो की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करेंगे ताकि द्वितीय ंस्करण इससे अच्छा बन सके।

रामरङ्ग शर्मा

मालती शर्मा

भूमिका

उपनिषद् किसे कहते है—'उपनिषद् शब्द उप तथा नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु से बना है जो शरण, अवसादन तथा गति अर्थ का बोध कराता है। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा भी है—"सदेर्धातोर्विशरणगत्यवसादनार्थस्योपनि-पूर्वस्य क्विप्प्रत्ययान्तस्य रूपमिदमुपनिषदिति" (काठकोपनिषद्-शाकरभाष्य)। 'उपनिषद्यते प्राप्यते ब्रह्मविद्या अनया इति उपनिषद्' अर्थात् जिससे ब्रह्मविद्या की प्राप्ति होती है, उसे उपनिषद् कहते है।

ब्रह्म अथवा आत्मा के स्वरूप का ज्ञान कराने वाली जो विद्या है वह उपनिषद् कहलाती है। क्योकि, जो मुमुक्षु अधिकारी दृष्ट और श्रुत दोनो विषयो से विरक्त होकर उपनिषदो में कथित ब्रह्मविद्या की शरण लेते है और उस विद्या का निश्चयपूर्वक अनुष्ठान करते है उन अधिकारियो का उप-निषदो के द्वारा ससार के मूल बीज अविद्या (अज्ञान) आदि का नाश हो जाता है। अविद्या की विरोधिनो विद्या है और वह विद्या उपनिषदों में निहित होने के कारण उपनिषदो को विद्या शब्द से सबोधित किया जाता है। यह अर्थ सद् धातु के अवसादन अर्थ से है। संसार का यह नियम है कि जब तक मूल कारण को निवृत्ति नही होती तब तक उसके कार्यभूत पदार्थ की निवृत्ति भो आत्यन्तिक रूप से नही होती। निवृत्ति दो प्रकार की शास्त्र में कही गयी है एक लयरूप निवृत्ति और दूसरी आत्यन्तिकी निवृत्ति। लयरूप निवृत्ति वह है जो कारण को विद्यमान रखते हुए कार्य की ऊपर से निवृत्ति करती है (नाश करती है)। लेकिन इस निवृत्ति से कार्य का समूल नाश नही होता—जैसे हम नाई के द्वारा बाल बनवाते है। जिस समय हमारे बाल नाई बना देता है उस समय तो ऐसा लगता है कि अब ये बाल जल्दी ऊपर नही आयेंगे, लेकिन दूसरे दिन प्रातःकाल उठते ही हाथ घुमाओ तो पता लगता है कि बाल फिर से अपना प्रभाव जमा रहे है। यही खूबी नाखूनो की भी है। क्षण भर के लिए मालूम देता है कि बिलकुल इनकी निवृत्ति हो गयी लेकिन

बाद में वे पुनः अपना प्रभाव बताते है। क्योंकि उनका कर्त्तन ऊपर से ही किया गया है, लेकिन उनकी जड अर्थात् कारण तो वैसा ही मौजूद रहता है। इस प्रकार की निवृत्ति (विनाश) को लय रूप निवृत्ति कहते है। ठीक इसी प्रकार ससार की लय रूप निवृत्ति (क्षणिक निवृत्ति) सुषुप्ति अवस्थाएँ (निद्रित अवस्थाएँ) होती हैं। लेकिन प्रातःकाल जागते ही पुनः संसार उद्बुद्ध हो जाता है। वास्तव मे ससार की निवृत्ति मे सुख है, न कि ससार को स्थित रखने में। वह सोता है ससार की निवृत्ति के लिए लेकिन उसकी यह ससार-निवृत्ति सदा के लिए नही होती इसलिए पुनः जागते ही दुःखो के काले बादल उसके सिर पर छा जाते है। हर एक व्यक्ति का प्रयत्न ससार निवृत्ति के लिए अर्थात् सच्ची आनन्दानुभूति के लिए चल रहा है, लेकिन जीवात्मा अविद्या मे जब तक पडा हुआ है तबतक संसार की निवृत्ति न कर पायेगा। क्योंकि संसार का मूल कारण अविद्या तो पडी ही है। इस निवृत्ति को लयरूप निवृत्ति कहते हैं।

दूसरी निवृत्ति है आत्यन्तिकी निवृत्ति और वह होगी उपनिषद् विद्या से। शंकराचार्य कहते है "कुरुते गगासागरगमन, व्रतपरिपालनमथवा दान, ज्ञानविहीने सर्वमतेन, मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन।" पुरुष कितना ही गगा मे नहाता रहे, व्रतो का पालन करता रहे, अथवा दान देता रहे लेकिन मुक्ति ज्ञान के बिना नही होगी। सच्चा ज्ञान कहाँ है ? उपनिषदो में। उपनिषद् विद्या क्या करती है ? ससार की निवृत्ति। वह भी संसार की कारणीभूत अविद्या के निवृत्तिसहित—अर्थात् कारण सहित कार्य का नाश होता है, उपनिषद् से। इसी को कहते है आत्मा की निवृत्ति। जब आदमी ससार के लय रूप निवृत्ति मे, निद्रा अवस्था मे, आनन्दानुभूति प्राप्त कर लेता है तो उसकी कल्पना करना ही कठिन है। किसी अकिंचन को सार्वभौम पद मिले वैसे ही यह अवस्था होती है। यह अवस्था उपनिषदों के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

वैदिक वाङ्मय मे उपनिषदों का स्थान—आध्यात्म विज्ञान की चर्चाओ में वेदो के बाद उपनिषदो को ही सर्वाधिक आदर मिला है। ब्रह्म सम्बन्धी दार्शनिकता का विवेचन इन ग्रन्थो मे जिस प्रकार वर्णित है, वैसा वर्णन विश्व के अन्य ग्रन्थो मे यदि असम्भव नही, तो दुर्लभ अवश्य कहा जा सकता है। वेदों के वास्तविक सन्देश-वाहक के रूप मे उपनिषद् वाङ्मय को आलोचको ने देखा है।

इन ग्रन्थो की रचना उस समय हुई, जब लोग ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थो की सहायता से वेदो पर अपनी-अपनी व्याख्यायें करने लगे। कर्म को प्रधानता देने वाले ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थो ने जब ज्ञान को गौण मानकर कर्मकाण्ड के नाम पर पशु-हिंसा आदि को प्रश्रय एव जाति-पाँति के नियम-उपनियमो को और सुदृढ बनाने की कल्पनायें की तो उपनिषद् ग्रन्थकारो ने ज्ञान की दुन्दुभी बजाकर ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थो की आलोचना आरम्भ कर दी। यही प्रमुख कारण है कि अधिकाश विद्वान् उपनिषदो को ब्राह्मण-आरण्यक साहित्य का आलोचनात्मक वाङ्मय मानते है। विश्व की अधिकतर जीवित भाषाओ में इन ग्रन्थो का अनुवाद ही इस बात का प्रमाण है कि लोगो ने उपनिषदो के महत्व को समझने का प्रयास किया है। मुगल साम्राज्य मे औरंगजेब के सुपुत्र दाराशिकोह ने लगभग पचास उपनिषदो का अनुवाद फारसी भाषा मे करवा कर उनके अध्ययन की ओर अपना मन लगाया था। फारसी अनुवाद से प्रेरणा पाकर डुपरेन महोदय जैसे न जाने कितने फ्रेंच विद्वानो का ध्यान उपनिषदो के प्रगाढ विषय की ओर गया। इन ग्रन्थो का मूलरूप मे अध्ययन करने के लिये विदेशी विद्वानो ने संस्कृत का अध्ययन किया और मुक्तकण्ठ से प्रशसा की कि "उपनिषद् मानव मस्तिष्क की सर्वोत्तम कृति है।" भारतीय विद्वानो के अतिरिक्त प्रमुख रूप से जिन पाश्चात्य विद्वानो ने पूर्ण रूप से उपनिषदो का चिन्तन किया है उनमे मैक्समूलर, फ्राक, वेबर, विंटरनित्स आदि का नाम बडे आदर से लिया जाता है। जीवात्मा, जगत् और ब्रह्म क्या है? इनकी वास्तविक स्थिति क्या है? जिज्ञासुओ के इन प्रश्नो के नवीन एव सरल प्रणाली से युक्तिसगत उत्तरो के कारण ही उपनिषदों का महत्व वर्णनातीत हो गया है।

उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय—उपनिषदो का प्रधान रूप से वर्ण्य विषय आत्मा, पुनर्जन्म, कर्मफल आदि है जिनका वर्णन वेदो मे प्रायः नही के तुल्य है। उपनिषद् ग्रन्थो को वेदान्त ग्रन्थ ही माना गया है। आनन्द-कन्द भगवान कृष्ण ने गीता का जो उपदेश दिया उसकी आधारशिला उपनिषद् ही है। सम्पूर्ण भारतीय दार्शनिक एवं धार्मिक वाङ्मय के बीजभूत उपनिषद् ही माने जाते है। विषय की दृष्टि से इन ग्रन्थो के तीन प्रयोजन कहे जा सकते है—ज्ञान प्रतिपादन, ब्रह्मविद्या प्रतिपादन, साधनामार्ग प्रतिपादन।

(१) ज्ञान प्रतिपादन—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अर्थात् वास्तविक ज्ञान के बिना जीव की मुक्ति कभी नही हो सकता। आवागमन के चक्र मे पडकर जीवात्मा को कूकर, शूकर, कीट पतग आदि चौरासी (८४) लाख योनियो मे तब तक भटकना पडता है जब तक जीव अपने सच्चे स्वरूप का अवलोकन नही कर लेता। इसीलिए मोक्ष-प्राप्ति की अभिलाषा वाले विवेकी जन सदा अपने कल्याण के लिए ज्ञान विषयक उपनिषदो की शरण लेते है। ज्ञान विषयक उपनिषदो मे प्रधान उपनिषद् है :—ईशावास्य, कठ, केन, प्रश्न, मुण्डक, माडूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर, आध्यात्म, महोपनिषद्, मैत्रायणी। इन उपनिषदों में ब्रह्मविद्या के प्रतिपादन के अतिरिक्त प्रश्नोत्तर के रूप में विभिन्न गूढार्थों का विवेचन भी किया गया है। प्रश्नोपनिषद् म ब्रह्म-प्राप्ति की चार आधार-शिलाएँ मानी गयी है :—श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, तप और धैर्य। ऐतरेय उपनिषद् मे सृष्टि निर्माण सम्बन्धी विषय को बडी सरल विधि से समझाया गया है। ईशोपनिषद् मे प्रधानरूप से ब्रह्म की व्यापकता के साथ ही साथ ब्रह्म एव आत्मा मे अभेद-बुद्धि रखने का उपदेश भी दिया गया है।

(२) ब्रह्मविद्या प्रतिपादन—ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक उपनिषदो की सख्या लगभग ३५ है। ये उपनिषद् प्राय. गद्य साहित्य मे ही लिखे गये है। ब्रह्म के स्वरूप का चित्रण बडे ही मनोरजक ढग से किया गया है जिससे एक साधारण बुद्धि वाला व्यक्ति भी ब्रह्म के विषय मे जानकारी कर सके। ब्रह्म विद्या के प्रकाशक उपनिषदो मे मुख्य है—ब्रह्मोपनिषद्, तेजोबिन्दु, योगतत्व, स्वसंवेद्य, शाडिल्य, नारद, परिव्राजक, आत्मबोध, याज्ञवल्क्य, अवधूत, परमहस, निर्वाण।

(३) साधना मार्ग प्रतिपादन—साधना का महत्व हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे भरा पडा है। केवल उपनिषद् साहित्य मे ही लगभग चालीस ग्रन्थ होगे जो साधना की महत्ता तथा उसके विधानों पर पर्याप्त प्रकाश डालते है। साधना द्वारा लौकिक एव पारलौकिक दोनो प्रकार के सुखो की प्राप्ति का विशद वर्णन है। देवी और देवताओ मे राम, सीता, हनुमान आदि देवताओ की साधना का वर्णन अच्छी प्रकार से इन ग्रन्थो मे वर्णित है। साधना मार्ग का प्रतिपादन करने वाले उपनिषदो मे मुख्य हैं—गायत्री रहस्य, सौभाग्य-

लक्ष्मी, सीता, राधा, नीलरुद्र, सावित्री, चाक्षुप, कलि-सतरण, कृष्णोपनिषद, ध्यान बिन्दु, प्राणाग्निहोत्र। इन उपनिषद् ग्रन्थों के नामकरण से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस काल में अवतारवाद अपनी जड़ें जमा चुका था। विभिन्न सम्प्रदाय अपने-अपने देवताओ की साधना में पर्याप्त रुचि लेते थे। महर्षियों द्वारा प्रतिपादित विषयो की साधना में लगे हुए साधकों की मनोवृत्ति का बडा ही सुन्दर वर्णन इन ग्रन्थो मे उपलब्ध है।

उपनिषदो की संख्या—उपनिषदों की निश्चित संख्या के बारे में विद्वानो में मतैक्य नही है। मुक्तिकोपनिषद् में उपनिषदो की संख्या १०८ बतायी गयी है जिनका विवरण इस प्रकार है—ऋग्वेद से सम्बन्धित १० उपनिषद्, शुक्ल-यजुर्वेद से १९, कृष्ण यजुर्वेद से ३२, सामवेद से १६ और अथर्ववेद से ३१। इस प्रकार १०८ उपनिषद् ग्रन्थो का प्रकाशन बम्बई के निर्णय सागर प्रेस ने किया है। किन्तु बम्बई के गुजराती प्रिंटिंग प्रेस से प्रकाशित 'उपनिषद् वाक्य महाकोष' मे २२३ उपनिषदो की नामावली दी गयी है जब कि अडियार लाइब्रेरी, मद्रास द्वारा उपनिषद् संग्रह मे १७९ उपनिषदों का सकेत है। अस्तु, उपनिषदो की संख्या जो भी हो, किन्तु इस समय उपनिषदो मे ११ उपनिषद् अत्यधिक प्रसिद्ध हैं जिनपर शाकरभाष्य भी मिलता है-ईशावास्य, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, श्वेताश्वतर, छान्दोग्य, बृहदारण्यक।

कथावतरण—वाजश्रवस मुनि विश्वजित् यज्ञ के अन्त में जब ऋषियों को दक्षिणा में गायें देने लगे तो उनके बालक (पुत्र) नचिकेता ने देखा कि पिताजी हृष्ट पुष्ट और दूध देने वाली गायें मेरे लिए बचा ले रहे है और बूढी एवं बेकाम गायों को ब्राह्मणो के लिए दे रहे हैं। तब अपने पिता को उनके इस दान की व्यर्थता और ममत्व त्याग द्वारा आत्मज्ञान का बोध कराने के लिए उसने स्वयं अपने दान की जिज्ञासा की, क्योंकि विश्वजित यज्ञ मे सर्वस्व दान कर दिया जाता है, अपना कहने योग्य कोई पदार्थ शेष नही रह पाता। अतः "जिसके लिए हृष्ट-पुष्ट गायें रख रहे है उसका भी आपको दान करना चाहिए," यह दर्शाना ही कठोपनिषद् के कथानायक (नचिकेता) को अभीष्ट है एव इस उपनिषद् के अवतरण का यही हेतु है।

कठोपनिषद् कथासार—यज्ञो के माध्यम से हमारे तपःपूत विश्ववन्द्य महर्षियो ने ईश्वर-अस्तित्त्व, आत्म-नित्यत्त्व, पुनर्जन्म विषयक मान्यता तथा वेदो की प्रामाणिकता के असीम सौरभ से निःसन्देह सम्पूर्ण ससार के कण-कण को सुरभित किया है। यद्यपि कालचक्र के अव्याहत प्रभाव ने मानव जाति की सास्कृतिक परम्परा को झकझोर दिया है तथापि भारतीय चिन्तन के मूलतत्त्व आज भी अपनी अमरता की अमिट छाप बनाये हुए हैं। प्रस्तुत उपनिषद् का कथानक भी हमारी प्राचीन पवित्र परम्पराओ की एक कडी है। यह कृष्ण-यजुर्वेद की कठ शाखा का उपनिषद् है। इसमे दो अध्याय एवं छः वल्लियाँ है।

महर्षि वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ने विश्वजित (सर्वमेध) नामक एक यज्ञ किया। परम्परा के अनुसार 'सर्ववेदसं ददौ'—की उक्ति को मुनि उद्दालक ने चरितार्थ किया, किन्तु ऋत्विजो को दक्षिणा देते समय उनसे एक भूल हो गयी। अच्छी गायें तो पुत्र नचिकेता के लिए रख ली और बूढी तथा दुग्ध-रहित गायें ब्राह्मणों को अर्पित करने लगे। यह देखकर 'पुम् नाम नरकात् त्रायते इति पुत्र' को चरितार्थ करनेवाले नचिकेता के मन में श्रद्धा ने प्रवेश किया और पिता के अनिष्ट निवारण हेतु ही उसने अपने पिता से पूछा—'तत् कस्मै मा दास्यसीति'। दो बार पूछने पर भी पिता ने नचिकेता की बात अनसुनी कर दी। अपनी धुन के पक्के ऋषिकुमार ने तीसरी बार फिर पिता से वही प्रश्न किया। उद्दालक चिढ गये और खीझकर कहा—'मृत्यवे त्वा ददामीति'। पिता के इस वचन को सुनकर नचिकेता सीधे यमपुरी में पहुँच गया। यम कार्यवशात् वहाँ न थे। तीन दिन तक अन्न-जल ग्रहण किये बिना नचिकेता ने यम की प्रतीक्षा की। यम भगवान के आने पर उनकी पत्नी ने उन्हे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और सर्वप्रथम अतिथि-सत्कार की बात की। यम ने तत्काल इस अनोखे अतिथि से क्षमा याचना की और तीन दिन तक कष्ट सहने के कारण तीन वरदान मागने की प्रार्थना की (कठोप० १।१।९)। इस प्रकार अतिथिसत्कार को सुगम, सरल सरणि भारतीय परम्परा की विशेषता रही है।

तीन वरदान—नचिकेता ने अपने प्रथम वरदान मे अपने प्रति पिता प्रसन्नता की याचना की (कठोप० १।१।१०)। द्वितीय वरदान मे स्वर्ग

साधन भूत अग्नि—(नचिकेत) विद्या के ज्ञान को मागा (कठोपनिषद १।१।१३)। इन दो वरदानों का देने में यम भगवान ने कोई आनाकानी नही की। परन्तु, तीसरे वरदान मे आत्मबोध (अर्थात् मृत्यु के पश्चात् आत्मा की क्या स्थिति है (कठा० १।१।२०) के मागने पर यम सतर्क हो गये और जिज्ञासु नचिकेता पर तृतीय वरदान न मागने हेतु दबाव डालने लगे। यम ने ससार का सम्पूर्ण वैभव देने की बात की, किन्तु विवेकी नचिकेता अपने प्रण से तनिक भी विचलित नही हुए। यम ने साधक की प्रत्येक प्रकार से परीक्षा ली, यहाँ तक कि उसे भय और लोभ की शृङ्खलाओ मे बाँधना चाहा, परन्तु सब व्यर्थ रहा। अन्त मे नचिकेता को एक सुयोग्य आत्मविज्ञान का अधिकारी मान कर यम ने हार मान ली और नचिकेता को आत्मतत्त्व का बोध कराने से पहले श्रेय और प्रेय पदार्थो का अन्तर समझाया।

श्रेय और प्रेय पदार्थ—प्रयोजन भिन्न होते हुए भी श्रेय और प्रेय पदार्थ मानव को अपने बन्धन मे बाँधते है, अर्थात् अपनी ओर आकृष्ट करते है (कठो० १।२।१)। इतना होने पर भी श्रेय (कल्याण मार्ग) अपनाने वाले का कल्याण होता है और दूसरी ओर प्रेय—सासारिक भोगवाले प्रवृत्ति पथ के पथिक को बारम्बार ८४ लाख योनियो मे भटकना पडता है। सौभाग्य से नचिकेता ने श्रेय मार्ग को अपनाकर सासारिक विविध प्रलोभन दिखाने वाले यम को चकित एव प्रभावित किया है। नचिकेता की प्रशसा करते हुए स्वयं यम ने (कठा० १।२।४।) कहा है कि मैं तुम्हें विद्याभिलाषी मानता हूँ।

रथ-रथी का रूपक—यद्यपि यह आत्मा नित्य एव प्रकाशरूप है तथापि इसके दर्शन सहज नहीं है, क्योंकि यह बुद्धिरूपी गुफा मे छिपा रहता है। जब कोई वीर पुरुष सासारिक विषयो से ऊपर उठकर देखता है तभी उसे इसका साक्षात्कार होता है। आत्मा के स्वरूप को जानने से पूर्व उसके साधन प्रणव (ओंकार) का ज्ञान आवश्यक है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म एव महान् से भी महान् आत्मा है। इसे पाने के लिये न तो विशाल बुद्धि की आवश्यकता है और न ही असीम ज्ञानराशि की, क्योंकि इस आत्मतत्त्व को जानने के लिये निर्मल मन तथा लगन की आवश्यकता है। यहाँ ब्रह्म-प्राप्ति के साधन को रथ और रथी के रूपक द्वारा समझाया गया है (कठा० १।३।३-४)। शरीर रथ है, आत्मा रथी (मालिक)

है, बुद्धि सारथि है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ अश्व (घोडे) है, रूप-रस-गन्ध
स्पर्श-शब्द ही इन घोडो के मार्ग है और मन से युक्त आत्मा ही भोक्ता है। जि
साधक की मनरूपी लगाम बुद्धिरूपी सारथि के कब्जे मे है और इन्द्रियाँ रू
घोडे नियन्त्रण मे है उसे परमपद की प्राप्ति होती है। उसे ही 'तद्विष्णोः पर
पदम्' कहा गया है और इस पुरुष से परे और कोई नहीं 'सा काष्ठा सा परा गति
कहा गया है। मृत्यु के पश्चात् प्राणी की क्या गति होती है ? इस प्रश्न का उत्
यम ने देते हुए कहा—कर्मफल के अनुसार जीव विभिन्न योनियो मे भ्रमण कर
है और कर्मफल के त्याग से उसे मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। ब्रह्म सर्वव्याप
है, वह दु खो से लिप्त नही होता। उसी परम ब्रह्म द्वारा ही यह सब कु
प्रकाशित होता है (कठो० २।२।१५)। कठोपनिषद् की अन्तिम वल्ली मे सस
को अश्वत्थ (पीपल वृक्ष) के रूप मे वर्णित किया गया है जिसका मूल (ब्रह्म
ऊपर कहा गया है। सम्पूर्ण स्थावर और जगम जगत् इसी मे आश्रित है। इ
प्रकार बडी सूक्ष्मता से ब्रह्म, जीव एव जगत की स्थिति को स्पष्ट किया गया है

कठोपनिषद् के महायज्ञ—स्मृतिकारो ने मानव कल्याण हेतु पाँच यज्ञो
प्रतिपादन किया है भूतयज्ञ पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ, देवयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ
कठोपनिषद् मे इन पाँचों यज्ञो का सकेत है।

१ वैश्वदेव (भूत यज्ञ) की ओर नचिकेता का ध्यान है तभी तो उस
'पीतोदकाः, जग्धतृणा, दुग्धदोहाः निरिन्द्रिया' इत्यादि गायो को दान देने
अपने पिता को रोका है, क्योंकि इनकी रक्षा करना भूतयज्ञ मे आता है अथ
गृहस्थ को चाहिए कि वह ऐसे पशुओ का स्वय पालन करे न कि उनसे अप
जान बचाने हेतु औरों को दान कर दे।

२ पितृयज्ञ के प्रति कठोपनिषद्कार की दृढ आस्था है कि माता-पि
की प्रसन्नता ही के विशेषता है। नचिकेता ने यम से तीन वरदान माँगते स
सर्वप्रथम पितृ-परितोष ही मागा, क्योकि वह पिता को अप्रसन्न नही देख
चाहता (कठोप० १।१।१०)।

३. देवयज्ञ में देवताओ की अर्चना की जाती है। यहाँ भी अ
द्वितीय वरदान मे नचिकेता ने नचिकेत अग्नि के ज्ञान की इच्छा की है, क्यो
अग्निदेव के प्रसन्न होने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है (कठोप० १।१।१२-१३)

४. अतिथियज्ञ के प्रसग मे ब्रह्मविद्या के महान् प्रवक्ता यम ने एक लघु ब्राह्मण कुमार के आगे सिर झुका दिया और तीन दिन अनुपस्थित रहने हेतु क्षमा माँगी। इसके साथ ही प्रायश्चित्तस्वरूप तीन वरदानो की घोषणा की।

५. ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत नचिकेत ने आत्मज्ञान की याचना की है। इस आत्मज्ञान रूपी यज्ञ के सामने शेष सभी सासारिक सुख तुच्छ एव नाशवान है। आत्मबोध होने पर जीव को ८४ लाख योनियो के आवागमन से मुक्ति मिल जाती है। उपर्युक्त इन पाँच महायज्ञो के द्वारा कठोपनिषद् की शिक्षाओ का बोध जहाँ सुगमता से होता है वही प्रस्तुत उपनिषद् के नायक नचिकेता के उज्ज्वल चरित्र का भी पता चलता है।

रामरङ्ग शर्मा
एवं
मालती शर्मा

रथयात्रा
सवत् २०३६

विषय सूची

श्री सरस्वत्यै नम.

कठोपनिषद्

प्रथम अध्याय

प्रथमा वल्ली

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं
करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु ।
मा विद्विषावहै ।
ॐ शान्ति. ! शान्तिः !! शान्ति. !!!

पदच्छेद—ॐ, सह, नौ, अवतु । सह, नौ, भुनक्तु । सह, वीर्यं, करवावहै । तेजस्वि, नौ, अधीतम्, अस्तु । मा, विद्विषावहै ।

[शां०] ॐनमो भगवते वैवस्वताय मृत्यवे ब्रह्मविद्याचार्याय नचिकेतसे च ।

अथ काठकोपनिषद्वल्लीनां सुखार्थप्रबोधनार्थम् अल्पग्रन्था वृत्तिरारभ्यते ।

सदेर्धातोर्विशरणगत्यवसादनार्थस्योपनिपूर्वस्य क्विप्प्रत्ययान्तस्य रूपमुपनिषदिति । उपनिषच्छब्देन च व्याचिख्यासितग्रन्थप्रतिपाद्यवेद्यवस्तुविषया विद्योच्यते ।

केन पुनरर्थयोगेन उपनिषच्छब्देन विद्योच्यते ? इत्युच्यते—

ये मुमुक्षवो दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णाः सन्त उपनिषच्छब्दवाच्य वक्ष्यमाणलक्षणां विद्यामुपसद्योपगम्य तन्निष्ठतया निश्चयेन शीलयन्ति तेषामविद्यादेः संसारबीजस्य विशरणाद्धिंसनाद् विनाशनादित्यनेनार्थयोगेन विद्या उपनिषदित्युच्यते। तथा च वक्ष्यति—"निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते" (क० उ० १।३।१५) इति ।

पूर्वोक्तविशेषणान्मुमुक्षून्वा परं ब्रह्म गमयतीति ब्रह्मगमयितृत्वेन योगाद् ब्रह्मविद्योपनिषद् । तथा च वक्ष्यति—"ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्यु (क०उ०२।३।१८) इति ।

लोकादिर्ब्रह्मजज्ञो योऽग्निस्तद्विषयाया विद्याया द्वितीयेन वरेण प्रार्थ्यमानायाः स्वर्गलोकफलप्राप्तिहेतुत्वेन गर्भवासजन्मजराद्युपद्रववृन्दस्य लोकान्तरे पौनःपुन्येन प्रवृत्तस्यावसादयितृत्वेन शैथिल्यापादनेन धात्वर्थयोगादग्निविद्याप्युपनिषदित्युच्यते । तथा च वक्ष्यति—"स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते" (क० उ० १।१।१३) इत्यादि ।

ननु चोपनिषच्छब्देनाध्येतारो ग्रन्थमप्यभिलषन्ति— उपनिषदमधीमहे, उपनिषदमध्यापयाम इति च ?

एवं नैष दोषोऽविद्यादिसंसारहेतुविशरणादेः सदिधात्वर्थस्य ग्रन्थमात्रेऽसम्भवाद्विद्यायां च सम्भवात् ग्रन्थस्यापि तादर्थ्येन तच्छब्दत्वोपपत्तेः, आयुर्वै घृतमित्यादिवत् । तस्माद्विद्यायां मुख्यया वृत्त्योपनिषच्छब्दो वर्तते, ग्रन्थे तु भक्त्येति ।

एवमुपनिषन्निर्वचनेनैव विशिष्टोऽधिकारी विद्यायामुक्तः । विषयश्च विशिष्ट उक्तो विद्यायाः परं ब्रह्म प्रत्यगात्मभूतम् । प्रयोजनं चास्या उपनिषद आत्यन्तिकी संसारनिवृत्तिर्ब्रह्मप्राप्तिलक्षणा । सम्बन्धश्चै-

वम्भूतप्रयोजनेनोक्तः। अतो तथोक्ताधिकारिविषयप्रयोजनसम्बन्धाया विद्यायाः करतलन्यस्तामलकवत् प्रकाशकत्वेन विशिष्टाधिकारिविषय-प्रयोजनसम्बन्धा एता वल्लयो भवन्ति इत्यतस्ता यथाप्रतिभान व्याचक्ष्महे।

संस्कृत व्याख्या—ॐ पदवाच्यः परमात्मा। नौ–आवाम्[१] द्वौ (गुरु-शिष्यौ) सह-सार्धम्। अवतु–रक्षतु। नौ–आवाम् द्वौ। सह–सार्धम्। भुनक्तु पालयतु[२]। वीर्यम्–पराक्रमम् (पुरुषार्थम)। सह–सार्धम्। करवावहै[३]–कुर्याव। नौ–आवयोः (द्वयो) अधीतम्—अध्ययनम् (पठितम्) तेजस्वि[४] प्रकाशमयम्। अस्तु—भूयात्। मा[५]—नैव। विद्विषावहै—परस्पर द्वेषम् कुर्याव।

हिन्दी शब्दार्थ– सह = साथ (साथ-साथ)। नौ = हम दोनों (गुरु शिष्य। अवतु = रक्षा करे। भुनक्तु = पालन करें। वीर्य = पराक्रम। करवावहै = करें। तेजस्वि = प्रकाशमय। अधीतम् = अध्ययन किया हुआ। अस्तु = हो। मा = (कभी) नहीं। विद्विषावहै = द्वेष करें।

भावार्थ—यह वैदिक परम्परा में शान्ति पाठ है, इसका भावार्थ यह है कि ओंकार पद से कहे जाने वाले परमात्मा हम दोनों (गुरु और शिष्य) की रक्षा करें तथा हम दोनों का साथ-साथ पालन करें। हम दोनों एक साथ ही मिल कर पुरुषार्थ के लिए पराक्रम करें। हम दोनों का पढ़ा हुआ इस लोक तथा परलोक में प्रकाशमय हो। हम किसी से द्वेष न करें।

विशेष—१ वेद को आनुश्रविक कहते हैं (वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययन-पूर्वकम्) वेदों का सब अध्ययन गुरु से अध्ययनपूर्वक ही होता है। गुरु के उच्चारण के पश्चात् उच्चारण करना यही आनुश्रविक शब्द का अर्थ है। वेदारम्भ के समय गुरु शिष्य ही प्रस्तुत होते हैं, इसलिए आवाम् इस द्विवचन से गुरु शिष्य ही ग्रहण किये गए है। २. भुनक्तु शब्द भुज् धातु से बनता है। इसके दो अर्थ हैं—पालन (रक्षा) और भोजन करना। पूर्व में भी रक्षतु पद आया है इससे पालन कहने से पुनरुक्ति नहीं है क्योंकि त्रिविध ताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) से बचाना रक्षा है, योगक्षेम करना (अलब्ध वस्तु का लाभ योग है, लब्ध का रक्षण)

पालन पदार्थ है। ३. करवावहै—कृ धातु का विधिलोट् आत्मनेपद में उत्तम पुरुष का द्विवचन है। ४—तेजस्वि इस लोक और परलोक में प्रकाशमय होना, क्योंकि वैदिक परम्परा परलोक में अधिक विश्वास करती है। ५. मा-निषेधार्थक अव्यय पद है।

May He (God) protect and support us both (the teacher and taught) to-gether May we both try to achieve opulence and to continue our study together May our study be sublime and there be no bitterness and malice between us.

ॐउशन्ह वै वाजश्रवस. सर्ववेदसं ददौ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥

पदच्छेद.—उशन्, ह, वै, वाजश्रवसः, सर्ववेदस, ददौ, तस्य, ह, नचिकेता, नाम, पुत्रः, आस।

अन्वय—ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसम् ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्रः आस।

[शा०] तत्राख्यायिका विद्यास्तुत्यर्था। उशन्कामयमानः, ह वा इति वृत्तार्थस्मरणार्थौ निपातौ। वाजमन्न तद्दानादिनिमित्त श्रवो यशो यस्य स वाजश्रवाः, रूढितो वा। तस्यापत्य वाजश्रवस. किल स. विश्वजिता सर्वमधेनेजे तत्फल कामयमानः। स तस्मिन्क्रतौ सववेदस सर्वस्व धन ददौ दत्तवान्। तस्य यजमानस्य ह नचिकेता नाम पुत्रः किलास बभूव ॥ १ ॥

सस्कृत व्याख्या—उशन्[१]—कामयमान. (स्वर्गादिलोकान् अभिलषन्) वाजश्रवस.—वाजम्—अन्नम् तेनान्नेन दानादिकर्मणा श्रव —कीर्त्तिर्यस्य स वाजश्रवास्तस्यापत्यम् वाजश्रवसः, अथवा रूढिनाम कस्यचिद् ऋषेः। (स विश्वजिता सर्वदक्षिणेन यज्ञेन) सर्ववेदस—सर्वधन-ददौ दत्तवान्, तस्य—ऋषेः (गौतमगोत्रस्य) नचिकेता नाम पुत्रो ह किल आस—बभूव।

हिन्दी शब्दार्थ—वाजश्रवसः = वाजश्रवा नामक ऋषि के पुत्र वाजश्रवस

नामक ऋषि। उशन् = कामना करते हुए। सर्ववेदसम् = सम्पूर्णधन। ददौ = दे दिया। आस = था।

भावार्थ—वाजश्रवा के पुत्र वाजश्रवस नामक ऋषि ने स्वर्गादिलोक प्राप्ति कामना से विश्वजित् नामक यज्ञ करके अपना सब धन ऋत्विज आदि को दान में दे दिया। उनका एक नचिकेता नाम का पुत्र था।

विशेष—उशद्[1] इस पद से काम्य कर्म की पूर्ति के लिए दक्षिणा आवश्यक है यह सूचित किया गया है।

1 Once upon a time at the vishwajit sacrifice vajasravas (the son of vajasrava) having a desire of heavenly rewards, sacrificed every thing what he possessed. He had a son called Nachiketa, as it is said.

तँ ह कुमारँ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु।
श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥ २ ॥

पदच्छेद—सन्त, कुमार, तं, दक्षिणासु, नीयमासु, श्रद्धा, आविवेश, सः, अमन्यत।

अन्वय—कुमारम् सन्तम् तम् दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धा आविवेश सः अमन्यत।

[शां०] त ह नचिकेतस कुमार प्रथमवयस सन्तमप्राप्तजननशक्ति बालमेव श्रद्धास्तिक्यबुद्धिः पितुर्हितकामप्रयुक्ताविवेश प्रविष्टवती। कस्मिन् काल इत्याह—ऋत्विग्भ्यः सदस्येभ्यश्च दक्षिणासु विभागेनोपनीयमानासु दक्षिणार्थासु गोषु। स आविष्टश्रद्धो नचिकेता अमन्यत।

संस्कृत व्याख्या—सन्तम्—उपस्थितम्—कुमारम्[1]—नचिकेतसम तम् दक्षिणासु[2] नीयमानासु—ऋत्विग्भ्यः सदस्येभ्यश्च प्राप्यमाणासु (गोषु) श्रद्धा—आस्तिक्यबुद्धिः। आविवेश—प्राप। सः कुमार। अमन्यत—अचिन्तयत्।

हिन्दी शब्दार्थ—त कुमार सन्तम् = (यद्यपि) वह (नचिकेता) बालक था। नीयमानासु = ले जाते हुए। श्रद्धा = आस्तिक बुद्धि। आविवेश = उत्पन्न हुई। स अमन्यत = उसने विचार किया।

भावार्थ—उपस्थित वह कुमार नचिकेता (यद्यपि बाल अवस्था का ही था तथापि अपने सम्मुख) दान मे अनर्ह गोदान से पिता का नरकादि लोक प्राप्ति रूप अहित समझ कर ऋत्विजों तथा सदस्यों द्वारा ले जायी जाने वाली गायों को देखते हुए हृदय में श्रद्धा बुद्धि उत्पन्न होने से इस प्रकार विचारारूढ हो गया।

विशेष—कुमार—कु = कुत्सित. = मार.—कामोयस्य स कुमार इस व्युत्पत्तिसे कुमार शब्द का अथ अप्राप्त यौवन (प्रजननादिशक्तिक) है। २—दक्षिणासु—वृद्धा—"जीर्णा गावो रजः कन्या जीर्णवासो ददाति यः तावन्नरके वासो यावच्छिद्रा चतुर्दश" इत्यादि वचनानुसार आगे के मन्त्रों के कथनानुसार दुग्ध रहितादि गायों को दक्षिणा मे दिये जाने के परिणाम की चर्चा है।

2 When the gifts (old cows) were being sorted and carried (to give the priests and Brahmans assembled) Nachiketa, though still a boy, was overpowered with the faith (to do good to his father) and thought

नचिकेता की शङ्का

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रिया. ।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत् ॥ ३ ॥

पदच्छेद—पीतोदकाः, जग्धतृणाः, दुग्धदोहा, निरिन्द्रियाः, अनन्दाः, नाम, ते, लोकाः तान् स, गच्छति ताः ददत्।

अन्वय—पीतोदकाः जग्धतृणाः दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ता ददत् सः तान् लोकान् गच्छति ते लोका अनन्दा नाम।

[शा०] कथमित्युच्यते।

दक्षिणार्था गावो विशेष्यन्ते। पीतमुदक याभिस्ता. पीतोदकाः, जग्ध भक्षित तृण याभिस्ता जग्धतृणा, दुग्धो दोहः क्षीराख्यो यासा ता दुग्धदोहाः, निरिन्द्रिया अप्रजननसमर्था जीर्णा निष्फला गाव इत्यर्थ.। यास्ता एवभूता गा ऋत्विग्भ्यो दक्षिणाबुद्धया ददत्प्रयच्छन्ननन्दा अनानन्दा असुखा नामेत्येतद्ये ते लोकास्तान्स यजमानो गच्छति।

संस्कृत व्याख्या—पीतोदकाः'—पीतमुदकं याभिस्ताः पीतोदकाः। वृद्धत्वात् जलपानशक्तिरहिता इत्यर्थः। जग्धतृणाः—जग्धं तृणं याभिस्ताः, घासादिभक्षणासमर्थाः। दुग्धदोहाः—दुग्धो दोहो यासास्ता, निरिन्द्रियाः अप्रजनन समर्थाः, वृद्धा निष्फला इत्यर्थः, एवंभुता या गावस्ता ददत्—(ऋत्विग्भ्यो दक्षिणारूपेण, प्रायच्छत्। अनन्दा' सुखविहीनास्ते शास्त्र-प्रसिद्धा लोकाः सन्ति तत्र स यजमानो गच्छति। इति नाचकेता अमन्यतेति पूर्वेण योजना।

हि० श०—पीतोदका = जो जल पी चुकी है अर्थात् जिनमे (वृद्धा-वस्थावश) जल पीने की शक्ति नहीं रह गयी है। जग्धतृणा = घास खाने मे असमर्थ। दुग्धदोहा = दूध देने मे असमर्थ। निरिन्द्रिया = प्रजनन-शक्ति हीन अर्थात् बछड़ा देने न असमर्थ। अनन्दा = आनन्द रहित, दुःख कारक।

भावार्थ—वृद्धा अवस्था वाली गौए जो जल पीकर विरत हो गई हैं अर्थात् जल पीने मे असमर्थ हैं एवं घास खाने मे और दूध देने मे भी असमर्थ तथा जनन शक्ति रहित अर्थात् बछड़ा ब्याने म असमथ ऐसी निष्फल गौओं को दक्षिणा रूप मे होता इत्यादि को देने वाला यजमान अनन्द (आनन्द रहित—दुःखोदर्क) लोक को जाता है। ऐसा नचिकेता ने विचार किया।

विशेष—पीतोदका' इत्यादि पद बहुव्रीहि समास हैं सभी शब्द गायो के वाचक हैं। सभी लाक्षणिक प्रयोग हैं।

3 He, who ingifts, endows such cows that have drunk their water and eaten their grass and that are incapable of bearing calves and giving milk, goes to such worlds that are full of sorrow and are joyless.

पिता के प्रश्न

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति।

पदच्छेद—सः, ह, उवाच, पितरम्, तात! कस्मै माँ दास्यसि, इति, द्वितीयम्, तृतीयम्।

अन्वय—सः पितरम् उवाच ह तत कस्मै मा दास्यसि इति ।

संस्कृत व्याख्या—स-नचिकेता.¹, ह, निश्चयार्थको निपातः, पितरा स्वजनकम् उवाच—उक्तवान्—तात—हेपितः, मा पुत्ररूप धनम् कस्मै—याज्ञिकाय ऋत्विजे दक्षिणारूपेण दास्यसि इति । प्रथममुक्तेनापि पित्रा, उपेद्यमाणो द्वितीयम् तृतीयम् आवृत्त्या उक्तवान् तादृशमेव वाक्यम् ।

भावार्थ—दी जानेवाली दक्षिणा के अनौचित्य को समझकर नचिकेता अपनी आत्मा को भी देकर पिता के लाभ की इच्छा करता हुआ अपने पिता से बोला—हे पिता ! मुझे दक्षिणा मे किसको देंगे ? जब पहलीबार कहने से पिता ने पुत्र की बात की उपेक्षा की तो दुबारा, तिबारा आग्रह करने लगा ।

विशेष—१. नचिकेता को जन्मान्तर का तप.पूत होने के कारण—"शुचीना श्रीमता गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते" अथवा "योगिनामेव कुले भवति धीमताम्" इत्यादि गीता के कथन अनुसार अल्पकाल मे ही ऐसी आस्तिक बुद्धि जाग्रत हुई और पिताको पाप से बचाने का उपाय उसने सोचा ।

पिता का उत्तर

द्वितीयं तृतीयं तँ होवाच मृत्यवे त्वां ददामीति ॥ ४ ॥

पदच्छेद—तम्, ह, उवाच, मृत्यवे त्वा, ददामि इति ॥४॥

अन्वय—द्वितीयम् तृतीयम् । (अपि सः पित्रे उवाच) तम् ह पिता उवाच त्वा मृत्यवे ददामि । इति ।

[शा०] तदेव क्रत्वसम्पत्तिनिमित्त पितुरनिष्ट फल मया पुत्रेण सता निवारणीयमात्मप्रदानेनापि क्रतुसम्पत्ति कृत्वेत्येव मन्यमानः पितरम् उपगम्य स होवाच पितर-हे तत तात कस्मै ऋत्विग्विशेषाय दक्षिणार्थं मा दास्यसि प्रयच्छसीत्येतत् । एवमुक्तेन पित्रोपेक्ष्यमाणोऽपि द्वितीय तृतीयमप्युवाच—कस्मै मा दास्यसि कस्मै मा दास्यसीति । नाय कुमार-स्वभाव इति क्रुद्धः सन्पिता त ह पुत्र किलोवाच मृत्यवे वैवस्वताय त्वा त्वा ददामीति ।

संस्कृत व्याख्या—तम्-पुत्र नचिकेतसम्, ह, उक्तोऽर्थः, उवाच-

उक्तवान् । त्वाम्-अनवसरवादिनम् , मृत्यवे-यमराजाय, ददामि-दास्यामि इति क्रोधावेशेन उक्तवान् ।।४।।

हि० श०—पितरम् = पिता से । उवाच = बोला । कस्मै = किसको अर्थात् किस होता या ऋत्विज को । माम् = मुझे । दास्यसि = देगे । द्वितीय तृतीयम् = दुबारा तिवारा ।

तम् = उसे अर्थात् नचिकेता को, त्वाम् = तुमको मृत्यवे = यमराज को । ददामि = दू गा ।

भावार्थ—क्रोध मे आकर पिताने पुत्र नचिकेताको कहा—तुम्हे यमराज को दूँगा ।

विशेष—इस प्रकार कहने पर भी उसे न तो भय हुआ न भ्रम या क्रोध, और शान्तिपूर्वक फिर बोला ।

4 "To whom will you offer me. My father !" Asked he once, twice and thrice And then his father answered him (in anger) "I will present you to death

नचिकेताका अनुताप

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।
किँस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥ ५ ॥

पदच्छेद—बहूनाम्, एमि, प्रथम , बहूनाम् एमि मध्यमः, किंस्वित्, यमस्य कर्तव्यम्, यत्, मया, अद्य, करिष्यति ।

अन्वय – बहूनाम् प्रथमः एमि, बहूनाम् मध्यमः एमि, यमस्य किंस्वित् कर्तव्यम् यत् मया अद्य करिष्यति ।

[शा०] स एवमुक्तः पुत्र एकान्ते परिदेवयाञ्चकार । कथम् ? इत्युच्यते—

बहूनां शिष्याणां पुत्राणां वैमि गच्छामि प्रथमः सन्मुख्यया शिष्यादिवृत्त्येत्यर्थ । मध्यमाना च बहूना मध्यमो मध्यमयेव वृत्त्यैमि । नाधमया कदाचिदपि । तमेव विशिष्टगुणमपि पुत्र मा मृत्यवे त्वा ददामीत्युक्तवान् पिता । स किंस्विद्यमस्य कर्तव्यं प्रयोजन मया प्रक्तेन करिष्यति यत्कर्तव्यमद्य ? नूनं प्रयोजनम् अनपेक्ष्यैव क्रोधवशादुक्तवान्

पिता। तथापि तत्पितुर्वचो मृषा मा भूदित्येवं मत्वा परिदेवनापूर्वकमाह पितर शोकाविष्ट कि मयोक्तमिति।

संस्कृत व्याख्या—बहूनाम-मध्ये प्रथम एवाहम् एमि—गच्छामि, बहूनाम् तादृशाना बहूनाम्मध्ये मध्यमः एवाहम, एमि गच्छामि। न तु मन्थरगमनेन पश्चात् इति भाव। तर्हि किमित्याह मृत्युर्मयाऽद्य यित्करिष्यति तत्तादृश यमस्य कर्तव्यम्। मादृशेन वालिशेन मृत्योःकि—प्रयोजनम् स्यात् यन ऋत्विगस्य इव मम गमन सफलम् स्याद् इति भावः।

हि० श०—बहूनाम् = बहुत से पुत्रों या शिष्यों मे। प्रथम = श्रेष्ठ। एमि = हूँ। किं स्वित् = कौन सा। कर्त्तव्यम् = कार्य यत् = जो। मया = मुझसे। अद्य = आज। करिष्यति = कराया जायगा।

भावार्थ.—नचिकेता पिता की बात सुनकर सहर्ष बोलता है कि (पिताके) शिष्यों मे, मैं बहुतों मे अच्छा हूँ (कई शिष्यों की अपेक्षा मेरा व्यवहार उत्तम है) और बहुतों से मध्यम हूँ (कई शिष्यों की अपेक्षा मेरा व्यवहार मध्यम है) किन्तु किसी से अधम वृत्ति मेरी नहीं है फिर भी पिता मुझे मृत्यु के मुखमे दे रहे हैं। आखिर यमराज को क्या काम है जो मुझसे आज कराया जायगा।

विशेष—प्रकृत मन्त्र से यही तात्पर्य हुआ कि व्यङ्ग ध्वनि से नचिकेता यही कहना चाहता है कि जैसे ऋत्विजों को अनर्ह गौओं का दान निष्फल है, उसी प्रकार यमराज को मुझे दे देना भी निष्फल प्रतीत होता है।

5 Having heard his father's word he thought to himself among many (sons & disciples) I am at the top and among many in the middle What object of death can be there that my father wants to achieve through me

अपने अनुचित कथन पर पश्चात्ताप करते हुए पिता को देखकर नचिकेता ने पुनः पिता से कहा—

पिता से आग्रह

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥६॥

पदच्छेद—अनुपश्य, यथा, पूर्वे, प्रतिपश्य, तथा, अपरे, सस्यम् इव मर्त्य. पच्यते, सस्यम् इव, आजायते, पुन. ॥

अन्वय—पूर्वे यथा (वृत्ता.) अनुपश्य तथा अपरे प्रतिपश्य। मर्त्यः सस्यम् इव पच्यते, पुनः सस्यम् इव आजायते।

[शा०] अनुपश्यालोचय निभालय अनुक्रमेण यथा येन प्रकारेण वृत्ता. पूर्व अतिक्रान्ता पितृपितामहादयस्तव। तान्दृष्ट्वा च तेषा वृत्तमास्थातुमर्हसि। वर्तमानाश्च साधवो यथावर्तन्ते ताश्च प्रतिपश्यालोचय तथा न च तेषु मृषाकरण वृत्त वर्तमान वास्ति। तद्विपरीतमसता च वृत्त मृषाकरणम्। न च मृषा कृत्वा कश्चिदजरामरो भवति। यत सस्यमिव मर्त्यो मनुष्य. पच्यत जीर्णो म्रियत। मृत्वा च सस्यमिव आजायते आविर्भवति पुन. एवमनित्ये जीवलोके किं मृषाकरणेन। पालय आत्मन. सत्यम्। प्रेषय मा यमाय इत्यभिप्रायः।

संस्कृत व्याख्या—पूर्व-पितामहादयः, यथा-येन प्रकारेण (मृषावादादि परित्यज्य स्थिता.) तथा तेन प्रकारेण अपर इतरे (साधव.) अद्यापि तिष्ठन्ति इति यावत्। अनुपश्यतान् अवलोकय तान् प्रतिपश्य प्रत्यवलोकय सर्वान् दृष्ट्वा तथैव भवतापि वर्तितव्यमितिभाव.। यतोहि मर्त्य—मरणधर्ममृत्युलोकेप्राणी सस्यमिव-धान्यसदृश. (अल्पकालेन) पच्यत जीर्णता प्राप्नोति (जीर्णश्च पुन.) सस्यमिव-धान्यसदृश एव पुनराजायते-पुनरुत्पद्यते।

हि० श०—पूर्व=पहले के अर्थात् पितामह आदि पूर्वज। यथा=जैसे। अनुपश्य=देखिये। पूर्व यथा अनुपश्य=अर्थात् अपने पितामह आदि पूर्व पुरुषों को देखिये (और) उनके सदृश (आचरण) कीजिये। अपरे=दूसरे। सस्यम्=धान्य। इव=सदृश। मर्त्य=मनुष्य। प्रतिपश्य=देखिये। पच्यते=पक जाता है वृद्ध मर जाता है। सस्यमिव=अन्न की तरह पुनः=फिर। आजायते=पैदा होता है।

भावार्थ—पूर्व के पितामह आदि श्रेष्ठ लोग जिस प्रकार आचरण करते रहे उसपर दृष्टिपातकर और अन्य साधुजन आज भी जैसे स्वधर्म मे स्थित हैं उनको देखिए। इस मृत्यु लोक मे प्राणी धान्य की तरह थोड़े

समय म पककर जर्जर होकर मरते हैं और फिर समय से अन्न की तरह उत्पन्न होते हैं।

विशेष—यथा जिस प्रकार पूर्वज मिथ्यावाद को छोड़ कर जीते रहे हैं उसी प्रकार आपको भी होना चाहिए। इस लिए हमारे मोहको छोड़कर अपने सकल्पवाक्यानुसार यमराज को देने मे अब सकोच न कीजिए यह भाव है, अपरे-आधुनिक साधुजनों से तात्पर्य है। ३-सस्यमिव-जैसे क्षेत्र में धान्य अल्पकाल मे पक जाता है उसी प्रकार इस मृत्युलोक मे प्राणी भी थोडे समय में जीर्ण होकर मर जाते हैं और फिर पैदा होते हैं। इस लिए इस नश्वर और अस्थिर जगत् मे आस्था न रखकर सत्यमार्ग का अवलम्बी होना चाहिए।

6. Think over your forefathers how they behaved and also consider how the other peoples do (Now a days) the mortal is like corn which once ripens and grow again.

अनुक्रम—इस प्रकार सुनकर पिता ने मिथ्यावाद से डर कर नचिकेता को यमराज के यहा भेज दिया और नचिकेता ने यमराज के द्वार पर जाकर तीन रात्रि पर्यन्त बिना खाये पिये निवास किया। यमराज उस समय अन्यत्र गये थे, प्रवास से आने पर वृद्ध मन्त्रियों ने इस प्रकार यम से कहा—

यमलोक मे नचिकेता के सत्कार का आग्रह

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्ति कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥ ७ ॥

पदच्छेद—वैश्वानर· प्रविशति, अतिथिः ब्राह्मण· गृहान्। तस्य एताः शान्तिम्, कुर्वन्ति, हर, वैवश्वत उदकम् ॥

अन्वय—ब्राह्मणः अतिथि (सन्) वैश्वानरः (इव) गृहान् प्रविशति, तस्य एताम् शान्ति कुर्वन्ति वैवस्वत् उदकम् हर।

[शा०] स एवमुक्त· पितात्मन सत्यतायै प्रेषयामास। स च यमभवन गत्वा तिस्रो रात्रीः उवास यमे प्रोषिते। प्रोष्यागत यमममात्या भार्या वा ऊचुर्बोधयन्तः—

वैश्वानरोऽग्निरेव साक्षात् प्रविशत्यतिथिः सन्ब्राह्मणो गृहान् दहन्निव तस्य दाहं शमयन्त इवाग्नेरेता पाद्यासनादिदानलक्षणा शान्ति कुर्वन्ति सन्तोऽतिथेर्यतोऽतो हराहर हे वैवस्वत उदक नचिकेतसे पाद्यार्थम् । यतश्चाकरणे प्रत्यवाय श्रूयते ।

संस्कृत व्याख्या—वैश्वानरः-साक्षादग्निरेव, अतिथि—अतिथिरूपेण ब्राह्मणः, गृहान् प्रविशति गृह आगच्छति, तस्य-अतिथेः एता. पद्यार्घादि-रूपाः शान्ति कुशल, कुर्वन्ति, सन्तः साधवः, अतो हे वैवश्वत-यम उदक हर तस्य पूजनाय जलमानय ।

हि० श०—वैश्वानरः = अग्नि । ब्राह्मण = ब्रह्मज्ञानी । प्रविशति = प्रवेश करता है, आया हुआ है । तस्य = उस (अतिथि) को । एता = इन (पूजादि) । शान्तिम् = प्रसन्नता को । वैवस्वत = यम । हर = लाइये । उदकम् = जल ।

भावार्थ—साक्षात् अग्नि रूप ही ब्राह्मण अतिथि होकर गृहस्थ के घर मे आता है, पूज्य होता है, उसकी पूजा के लिए सन्त ज्ञानी लोग पाद्य अर्घ आदि विधि का अपने ही कुशल के लिए करते हैं। इसलिए हे यमदेव आपके यहाँ भो अतिथि आया है उसकी पूजा कीजिये ।

विशेष—१ अतिथि—भारतीय परम्परा मे शास्त्रों के आधार पर अतिथि का बहुत महत्त्व कहा गया है । "गुरुरग्निर्द्विजातीना, वर्णाना ब्राह्मणो गुरुः, पतिरेको गुरुः स्त्रीणा सर्वस्याभ्यागतो गुरुः । अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति निवर्तते, स तस्मै दुष्कृत दत्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥२॥ इत्यादि । अर्थात् अतिथि यदि निराश होकर घर से चला जाय तो वह अपने पाप को देकर उस गृहस्थ के पुण्य को लेकर चला जाता है । किन्तु यह बात स्मरण रहे कि अतिथि की परिभाषा क्या है, इस विषय मे मनु ने लिखा है कि जिसके आनेकी कोई निश्चित तिथि न हो ।

7 A Brahmana guest enters the house like fire. House holders welcome him with the appeasing offerings therefore O Death bring water etc (for him)

उपक्रम—उपर्युक्त विषय को लेकर अग्रिम मन्त्र है । अतिथि की उपेक्षा मे अधिक प्रत्यवाय और मगल की हानि है ।—

आशाप्रतीक्षे संगतँ सूनृतां च
इष्टापूर्ते पुत्रपशूँश्च सर्वान्।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥

पदच्छेद—आशाप्रतीक्षे, सगतम्, सूनृताम् च, इष्टापूर्ते पुत्रपशून्, च, सर्वान्। एतद् वृङ्क्ते, पुरुषस्य, अल्पमेधसः यस्य, अनश्नन्, वसति, ब्राह्मणः गृहे ॥

अन्वय—ब्राह्मण अनश्नन् यस्य गृहे वसति (तस्य) अल्पमेधसः पुरुषस्य आशाप्रतीक्षे सङ्गतम् सूनृताम् इष्टापूर्ते पुत्रपशून् सर्वान् एतत् वृङ्क्ते।

[शा०] आशाप्रतीक्षऽनिर्ज्ञातप्राप्येष्टार्थप्रार्थना आशा, निर्ज्ञात प्राप्यार्थप्रतीक्षण प्रतीक्षा, ते आशाप्रतीक्षे। सगत तत्संयोगज फलम्, सूनृता च सूनुता हि प्रिया वाक्तान्निमित्त च, इष्टापूर्ते इष्ट यागज पूर्तमारामादिक्रियाज फलम्, पुत्रपशूश्च पुत्राश्च पशूंश्च सर्वानेतत्सर्वं यथोक्त वृङ्क्ते आवर्जयति विनाशयतीत्येतत्, पुरुषस्याल्पमेधसोऽल्पप्रज्ञस्य—यस्यानश्नन्नभुञ्जानो ब्राह्मणो गृहे वसति। तस्मादनुपेक्षणीयः सर्वावस्थास्वप्यतिथिरित्यर्थः।

संस्कृत व्याख्या—अल्पमेधसः—अल्पप्रज्ञस्य पुरुषस्य यस्य गृहे—ब्राह्मणो—अनश्नन्—अन्नमभुञ्जानो—वसति, तस्य पुरुषस्य—आशाप्रतीक्षे—आशा च प्रतीक्षा च आशा प्रतीक्षे (द्वन्द्वसमासः) काम सकल्पौ, संगत—तत्सगम सूनृता सत्यप्रियवाचम् इष्टापूत—इष्ट च पूर्तम्—इष्टापूर्ते, इष्ट—यागादि, पूर्त—कूपाराममठादिनिर्माणम्, पुत्रान् पशून्, च सर्वान् एतद वृङ्क्ते—वृजि वर्जने इति वर्जयति नाशयति इति तत्त्वम्।

हिं० शा०—यस्य = जिसके। गृहे—घर मे। ब्राह्मण = ब्रह्मज्ञानी (अतिथि) अनशन् = बिना भोजन किये। वसति = निवास करता है। तस्य अल्पमेधसः = उस अल्पबुद्धिवाले पुरुष की। आशा = अज्ञात वस्तु को पाने का इच्छा। प्रतीक्षा = ज्ञात वस्तु को पाने का इच्छा। सङ्गतम् =

सत्सगति । सुनृताम् = प्रिय वाणी इष्टापूर्ते = यज्ञादि का फलोदय । सर्वान् = सभी। पुत्रपशून् = पुत्र और पशु एतत् = इन सबों को। वृङ्क्ते = नष्ट करता है ।

भावार्थ—जिस अल्पज्ञानी पुरुष के घर मे ब्राह्मण अतिथि रूप मे आकर बिना खाये पिये बसता हा, उस पुरुष के सकल्प मनोरथ तथा सत्सगति, और सत्यप्रियवाणी तथा किया हुआ यज्ञादि कर्म, कूप वाटिका धर्मशाला आदि लोकोपकार कर्म, पुत्र और पशु आदि का नाश करता है ।

विशेष—इस मन्त्र मे यह कहा, कि पुरुष के लिए अन्य सब शुभ कर्मों से अतिथि सत्कार श्रेष्ठ है । महापुरुषों का कहना है कि भगवत अर्चन, पूजन से सिद्धि हो न हो किन्तु अतिथि सेवा से इह लौकिक और पारलौकिक दोनों सिद्धि होने मे सशय ही नहीं है ।

8 That man of little in-telligence to whose house a brahman guest comes and gets no food or hospitality destroys all hope, expectation, the fruit of good associations, sweet words sacifice, charity sons and catte etc (theze fore) at any cost a guest should never be negleted),

उपक्रम—इस प्रकार मन्त्रियों के कहने पर यमराज ने नचिकेता से कहा—

यमराज द्वारा वर प्रदान

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे
अनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः ।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु
तस्मात्प्रति त्रीन्वरान्वृणीष्व ।। ९ ।।

पदच्छेद—तिस्रः, रात्रीः, यद्, अवात्सीः, गृहे, मे, अनश्नन्, ब्रह्मन्, अतिथि, नमस्य, नमः, ते, अस्तु, ब्रह्मन्, स्वस्ति मे, अस्तु, तस्मात्, प्रति, त्रीन्, वरान्, वृणीष्व ।

अन्वय—हे ब्रह्मन् यत् अतिथिः त्वम् अनश्नन् गृहे तिस्रोरात्री. अवात्सीः तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व हे ब्रह्मन् ते नमः अस्तु, मे स्वस्ति अस्तु ।

[शा०]—एवमुक्तो मृत्युरुवाच नचिकेतसमुपगम्य पूजापुरःसरम्—तिस्रो रात्रीर्यद्यस्मादवात्सीः उषितवानसि गृहे मे ममानश्नन् हे ब्रह्मन्नतिथिः सन्नमस्यो नमस्कारार्हश्च तस्मान्नमस्ते तुभ्यमस्तु भवतु । हे ब्रह्मन्स्वस्ति भद्रं मेऽस्तु तस्माद्भवतोऽनश्नेन मद्गृहवासनिमित्ताद्दोषात्प्राप्त्युपशमेन । यद्यपि भवदनुग्रहेण सर्वं मम स्वस्ति स्यात्तथापि त्वदधिकसंप्रसादनार्थमनश्नेनोषिताम् एकैकां रात्रिं प्रति त्रीन्वरान् वृणीष्व अभिप्रेतार्थविशेषान् प्रार्थयस्व मत्तः ॥ ६ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे ब्रह्मन्, यस्मात्कारणाद् भवान्, अतिथि. तस्माद् हेतोः इति अध्याहारेणान्वयः, भवान्नमस्यः मे गृहे यत्तिस्रोरात्री. अनश्न—अन्नमभुञ्जेन् अवात्सी.–ऊपिवान् । हे ब्रह्मन् ते तुभ्यम्, नमः नमस्कारोऽस्तु मे–मह्यम् स्वस्ति, अस्तु, तस्माद् हेतो मह्य स्वस्ति यथास्यात, इत्येवमर्थं त्रीन् वरान् प्रतिरात्रिम् उद्दिश्यवृणीष्व–प्रार्थय ।

हि॰ श॰—नमस्य = नमस्कार करने योग्य । अतिथि. = अभ्यागत (नचिकेता) ते = आपको । नमः = नमस्कार है । मे = मेरा । स्वस्ति = कल्याण । अस्तु = हो । यत् = जो । मे = मेरे । गृहे = घर मे । तिस्र = तीन । रात्रीः = रात । अनशन् = बिना खाये । अवात्सी = निवास किये । तस्मात् = इस कारण से । प्रति = एक-एक रात के लिए । त्रीन् – तीन । वरान् = वरदान । वृणीष्व = माँग लो ।

भावार्थ – हे ब्रह्मन् आप अतिथिरूप से नमस्कार के पात्र हैं, जिस कारण आपने हमारे घर मे तीन रात्रि बिना अन्न खाये बास किया इसलिये आपको नमस्कार है जिससे हमारा कल्याण हो इसके निमित्त प्रत्येक रात्रि वास की सख्या से तीन वरदान माँग लो ।

विशेष—जन्म जन्मान्तर के पुण्यों द्वारा बाल अवस्था मे ही यम के पास स्वस्तिमान होकर जाना और उनसे सम्मान को प्राप्त करना, इससे ऋषि पुत्र का लोकोत्तर प्रभाव का वर्णन किया गया है ।

9 Since you have lived as a venerable guest in my house without eating and drinking for three nights O my Brahaman (now) accept my selutation and let there be

good fortune to me from that error'ask for three boons for each of the three nights

नचिकेता द्वारा प्रथम वर (पितृपरितोष) की याचना

उपक्रम—इस प्रकार यम के प्रार्थना करने पर नचिकेता उत्तर देते हुए बोला।

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्या-
द्वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो ।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत.
एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥ १० ॥

पदच्छेद—शान्तसकल्पः, सुमनाः, यथा, स्यात्, वीतमन्युः, गौतमः, मा, अभि, मृत्यो, त्वत्प्रसृष्ट, मा, अभि, वदेत्, प्रतीतः, एतत्, त्रयाणा, प्रथम, वरं, वृणे।

अन्वय—मृत्यो गौतमः शान्तसङ्कल्प सुमनाः मा अभिवीतमन्युः यथा स्यात् प्रतीतः त्वत्प्रसृष्टम् माभिवदेत् एतत् त्रयाणाम् प्रथम वरं वृणे।

शा०—नचिकेतास्त्वाह-यदि दित्सुर्वरान्—शान्तसंकल्प उपशान्तः संकल्पो यस्य मा प्रति यम प्राप्य किं नु करिष्यति मम पुत्र इति स शान्तसंकल्पः सुमनाः प्रसन्नमनाश्च यथा स्याद्वीतमन्युर्विगतरोषश्च गौतमो मम पिता माभि मा प्रति हे मृत्यो किं च त्वत्प्रसृष्ट त्वया विनिर्मुक्तं प्रेषित गृह प्रति मामभिवदेत्प्रतीतो लब्धस्मृति. स एवाय पुत्रो ममागत इत्येवं प्रत्यभिजानन्नित्यर्थः। एतत्प्रयोजन त्रयाणां प्रथममाद्यं वर वृणे प्रार्थये यत्पितुः परितोषणम्।

सं० व्या०—हे मृत्यो—यम, मम पिता—गौतमः, सुमनाः—प्रसन्नचित्तः, शान्तसंकल्पः-(मत्पुत्रः यम प्राप्य किं करिष्यति इति मद्विषयक) चिन्ता रहित., मा अभि-मा प्रति, वीतमन्युः—क्रोधरहितश्च यथा स्यात्, त्वत्प्रसृष्टं—त्वया इतः गृहाय प्रेषित मा अभि मा प्रति, प्रतीतः—यथा पूर्व विश्वस्तः प्रीत इत्यर्थः सन् वदेत्—यद्वा मा प्रति अभिवदेत्—आशीर्वादान् वदेत्। एतत् त्रयाणा वराणा मध्ये प्रथम वरम् वरदान वृणे—प्रार्थये।

हि० श०—मृत्यो = हे यमराज । गौतमः = वाजश्रवस् (मेरे पिता) । मा अभि = मेरे प्रति । यथा = जिस प्रकार । शान्तसकल्पः = शान्तचित्त एवं शान्त विचारों वाला । सुमनाः = प्रसन्न मन वाला । वीतमन्यु = क्रोध रहित । स्यात् = हो जाय । त्वत्प्रसृष्टम् = आप के द्वारा भेजे हुए । प्रतीतः = पहचानकर । वदेत् – बोलें । एतत् = यह । त्रयाणाम् = तीनों मे से । प्रथमम् = पहला । वृणे = माँगता हूँ ।

भावार्थ—हे मृत्यु ! मेरे पिता गौतम (वाजश्रवस) जिस प्रकार शान्त संकल्प, प्रसन्नचित्त और क्रोध रहित हो जायँ तथा आपके द्वारा (मृत्यु-लोक मे) भेजने पर मुझे पहचान लें और विश्वस्त होकर मुझ से बात करें, यही प्रथम वरदान आपके दिये हुए तीन वरदानों में से मैं चाहता हूँ ।

विशेष—यहाँ शान्त सकल्पादि पदों का लाक्षणिक अर्थ किया गया है । यह नचिकेता के आत्म सयम और क्रोध राहित्य का द्योतक है कि पिता के इस प्रकार के विरुद्ध व्यवहार पर भी उसने कितना ऊंचा पितृ-भक्ति का आदर्श प्रगट किया है ।

10 O yama ! my first prayer of the tnree said boons is that my father(Gautam) may be satisfied and pleased with me and become free from all worries and anger on me and also he may recognise me when I go back to him (father) from here (Death).

यमराज की स्वीकृति

नचिकेता के ऐसा कहने पर यम ने इस प्रकार कहा—

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत
औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः ।
सुखँ रात्रीः शयिता वीतमन्यु
स्त्वा ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥११॥

पदच्छेद—यथा, पुरस्तात्, भविता, प्रतीतः, औद्दालकिः, आरुणिः, मत्प्रसृष्टः, सुखम्, रात्रीः, शयिता, वीतमन्युः, त्वा, ददृशिवान्, मृत्युमुखात्, प्रमुक्तम् ।

अन्वय—औद्दालकिः आरुणिः पुरस्तात् यथा प्रतीतः आसीत् मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् त्वाम् ददृशिवान् (दृष्ट्वा) वीतमन्युः तथा भविता रात्रीः सुखं शयिता च ।

शां०—मृत्युरुवाच यथा बुद्धिस्त्वयि पुरस्तात् पूर्वमासीत्स्नेहसमन्विता पितुस्तव भविता प्रीतिसमन्वितस्तव पिता तथैव प्रतीतवान्सन्नौद्दालकि उद्दालक एवौद्दालकिः । अरुणस्यापत्यमारुणिः, द्व्यामुष्यायणो वा । मत्प्रसृष्टो मयानुज्ञात सन् इतरा अपि रात्रीः सुखं प्रसन्नमनाः शयिता स्वप्ता वीतमन्युर्विगतमन्युश्च भविता स्यात्त्वां पुत्रं ददृशिवान्दृष्टवान्स मृत्युमुखान्मृत्युगोचरात् प्रमुक्त सन्तम् ।

सं० व्या०—औद्दालकिः १—उद्दालक एव औद्दालकि स्वार्थे इञ् प्रत्ययः, आरुणिः—अरुणस्यापत्यमारुणि, अथवा उद्दालकस्यापत्यम्—अरुण तस्य गोत्रापत्यम्, आरुणि, (नचिकेतस पिता) मत्प्रसृष्टः२ मदनुगृहीतः—मदनुग्रहात् इत्यर्थः । यथापुरस्तात्—यथापूर्वम्, त्वयि प्रसन्नः प्रतीतः—तथाग्रेऽपि प्रसन्नो भविता, अपरच विगतमन्यु निवृत्तक्रोध सन् रात्रीः—उत्तरा अपि रात्री सुख.शयिता—सुखनिद्रा प्रास्यतीति भाव मृत्युमुखात् प्रमुक्तम्—पुनरागतम् त्वा दृशिवान्३—दृष्टवान् मन् इति पूर्वत एवान्वयः ।

हिन्दी शब्दार्थ—आरुणिः = अरुण के पुत्र (तुम्हारे पिता) पुरस्तात = मेरे यहाँ आने से पहले । यथा = जैसे । प्रतीतः = स्नेह युक्त मत् प्रसृष्टः = मेरी आज्ञा प्राप्त किया हुआ । भविता = होंगे (प्रसन्न होंगे) । मृत्युमुखात् = मृत्यु के मुख से अर्थात् मेरे अधिकार से । प्रमुक्तम् = छूटे हुए । त्वाम् = तुमको ददृशिवान् = देखेंगे । वीतमन्युः = क्रोध रहित होकर रात्रीः = रात्रियों मे । सुखम् = सुखपूर्वक । शयिता = सोवेंगे ।

भावार्थ—औद्दालक के (पुत्र) आरुणि तुम्हारे पिता हमारे अनुग्रह से जैसे पहले तुम पर प्रसन्न थे वैसे ही आगे भी प्रसन्न रहेंगे, और क्रोध रहित तथा आगे भी तुम्हारी चिन्ता से रहित होकर सुख पूर्वक सोयेंगे । क्यो कि मृत्यु के मुख से बच कर आये हुए तुमको देखकर उनका सुखी होना स्वाभाविक है ।

विशेष—औद्दालकि के विषय मे पहले व्याख्या कर चुके हैं या तो उद्दालक वंश के होने से औद्दलकि कहे गये हैं अथवा अरुण का पुत्र उनका

गोत्रापत्य आरुणि तद्धितान्त पद सिद्ध होता है । छान्दोग्योपनिषद् मे इनका सवाद इसी नाम से आया है । मत्प्रसृष्टः—हमारे अनुग्रह होने से, पिता का विशेषण है अथवा मत्प्रसृष्टम् यह द्वितीयान्त पद भी पाठान्तर म मिलता है, जो नचिकेता का विशेषण है । ददृशवान् यह छान्दस प्रयोग है । दृश् धातु से परोक्ष लिट् के स्थान मे क्वसु प्रत्यय लाकर ददृशिवान् रूप सिद्ध होता है, किन्तु यहा द्विर्वचनाभाव और कित् प्रयुक्त गुणाभाव का अभाव करके बना है ।

11 (Death said) With my permission your father Auddalaki Aruni will identify and favour you as before When (your father) sees you before him being set free from the jaws of Death his anger will be disappeared and he will have a sound sleep in future

स्वर्ग का स्वरूप

नचिकेता प्रथम वरदान प्राप्तकर द्वितीय वर की प्रार्थना करता है—

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति
न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१२॥

परिच्छेद—स्वर्गे, लोके, न, भयम्, किंचन्, अस्ति, न, तत्र, त्व, न, जरया, बिभेति, उभे, तीर्त्वा, अशनाया, पिपासे, शोकातिग, मोदते, स्वर्गत्लोके ।

अन्वय—स्वर्गे लोके किञ्चन भय न अस्ति तत्र त्व न (असि) न च जरया बिभेति उभे अशनायापिपासे तीर्त्वा शोकातिग' स्वर्गलोके मोदते ।

[शा०]—नचिकेता उवाच—स्वर्गे लोके रोगादिनिमित्त भय किंचन किंचिदपि नास्ति न च तत्र त्व मृत्यो सहसा प्रभवस्यतो जरया युक्त इह लोकवत्त्वत्तो न बिभेति कुतश्चित् तत्र । किंचोभे अशनायापिपासे तीर्त्वा-

तिक्रम्य शोकमतीत्य गच्छतीति शोकातिगः सन् मानसेन दुःखेन वर्जितो मोदते हृष्यति स्वर्गलोके दिव्ये ।

सं० व्याख्या—स्वर्गे लोके—'देशविशेषे, किञ्चन-अल्पमात्रमपि भय नास्ति, हे मृत्यो त्वमपि तत्र-स्वर्गलोके न नैव स्वप्रभाव कर्तु समर्थः इत्यर्थ । न च जरयाग्रस्तः सन् बिभेति-भय करोति, अशनाया-बुभुक्षा-पिपासाच ते उभे तीर्त्वा अतिक्रम्य, शोकातिगः—वीतशोकः सन् स्वर्गलोके मोदते ।

हिन्दी शब्दार्थ—किञ्चन = कुछ भी, थोड़ा भी । जरया = बुढापे से बिभेति = डरता है । अशनयापिपासे = भूख और प्यास । उभे = दोनों को । तीर्त्वा = अतिक्रमण करके । शोकातिग = दुःख-शोक से मुक्त ।

भावार्थ—स्वर्ग लोक मे थोड़ा भी डर नहीं होता है, हे मृत्यु देव ! आप का भी प्रभाव वहां नहीं है और न तो वहाँ के लोक बुढापा से ही डरते हैं, वहाँ के लोग भूख प्यास दोनों को अतिक्रमण कर शोक से मुक्त हो आनन्द से रहते हैं ।

विशेष—यहाँ स्वर्ग पद से मोक्ष ही विवक्षित है । आगे मन्त्र मे वही कहा गया है ।

स्वः—स्वर्गस्थैः गीयते स्वर्ग इस व्याख्या से स्वर्ग का अर्थ मोक्ष है । आगे मन्त्र मे सब मोक्ष का लक्षण कहा गया है ।

12. At the time of second boon Nachiketa said "No fear is there in heaven O Death ! you too are not there, nor any one trembles with the fear of old age Having Surpassed both hunger and thirst and being free from all the mental worries one rejoices there in the heavenly world

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो
प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त
एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥१३॥

पदच्छेद—सः, त्वम्, अग्निम्, स्वर्ग्यम्, अध्येषि, मृत्यो, प्रब्रूहि,

त्वम्, श्रद्धानाय, मह्यम् , स्वर्गलोका, अमृतत्वम् , भजन्ते, एतद् , द्वितीयेन, वृणे, वरेण ।

अन्वय—मृत्यो स. त्वम् स्वर्ग्यम् अग्निम् अध्येषि तम् श्रद्धानाय मह्यम् प्रब्रूहि स्वर्गलोका अमृतत्वम् भजन्ते एतत् द्वितीयेन वरेण वृणे ।

[शा०] एवगुणविशिष्टस्य स्वर्गलोकस्य प्राप्तिसाधनभूतमग्नि स त्वं मृत्युरध्येषि स्मरसि जानासि इत्यर्थः, हे मृत्यो यतस्त्व प्रब्रूहि कथय श्रद्धानाय श्रद्धावते मह्य स्वर्गार्थिने, येनाग्निना चित्तन स्वर्गलोकाः स्वर्गो लोको येषाँ ते स्वर्गलोकाः, यजमाना अमृतत्वम् अमरणता देवत्व भजन्ते प्राप्नुवन्ति । तदेतदग्निविज्ञान द्वितीयेन वरेण वृणे ।

स० व्या०—हेमृत्यो-यमदेव' स त्व-भवान् , स्वर्ग्यम् - स्वर्गप्रापकम् अग्निम् , अध्येषि-जानासि, येन, स्वर्गलोका -स्वर्गलोकस्था जनाः अमृतत्व-अमरताम्-भजन्ते-सेवन्ते (प्राप्नुवन्ति) इतिभावः, तथोक्तम् (छान्दोग्ये) 'परज्योतिरूप सपद्य स्वेन रूपेणाभिनिषद्यते' तम् त्व श्रद्धानाय-श्रद्धालवे-मह्यम् प्रब्रूहि कथय-उपदिश इतियावत् एतद् द्वितीयेन वरेण वृणे-याचे ।

हिन्दी शब्दार्थ—स्वर्ग्यम् = स्वर्ग को प्राप्त करानेवाली । अध्येषि = जानते हो । श्रद्धानाय = श्रद्धालु । प्रब्रूहि = उपदेश दो । स्वर्गलोका: = स्वर्ग के लोक । अमृतत्वम् = अमरता । भजन्ते = प्राप्त करते हैं । वृणे = मागता हूँ ।

भावार्थ—हे यमदेव ! स्वर्ग को प्राप्त कराने वाली उस अग्नि को आप जानते हैं जिसको जानलेने से स्वर्ग के लोग भी अमरता अर्थात् अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं । छान्दोग्य उपनिषद् मे लिखा है कि 'परज्योतिम-भिसपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते ।' इत्यादि । उस अग्नि का उपदेश मुझ श्रद्धालु के लिए कीजिए, यह मैं दूसरा वरदान मागता हूँ ।

वि०—यहा स्वर्गस्थ लोगो की अमरता प्राप्ति का कथन है—चेतन को स्वस्वरूप का ज्ञान होना । चेतन के, स्वस्वरूप ज्ञान के बिना जरामरणादि उपद्रवों का विच्छेद नहीं होता—गीता मे भगवान् श्री कृष्ण भी कहते हैं—'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोक विशाल क्षीणे पुण्ये मृत्युलोक विशन्तीत्यादि ।'

13. O yama ! you know well that fire which leads to heaven, I am full of this faith that by that fire the heaven

seekers gets immortality So let me know that supreme Fire, this is my second boon

यमराज का उत्तर

इस प्रकार नचिकेता की प्रार्थना पर पुनः ज्ञान का फल दर्शाते हुए यमराज ने कहा —

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध
स्वर्ग्यमग्निं नचिकेत. प्रजानन् ।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां
विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥१४॥

पदच्छेद—प्र, ते, ब्रवीमि, तद्, उ, मे, निबोध, स्वर्ग्यम्, अग्निम्, नचिकेत. प्रजानन्, अनन्तलोकाप्तिम्, अथो, प्रतिष्ठाम्, विद्धि, त्वम्, एतम्, निहितम्, गुहायाम् ।

अन्वय—(अहम्) स्वर्ग्यम् अग्निं प्रजानन् ते प्रब्रवीमि तत् उ मे निबोध नचिकेतः त्वम् एतम् अनन्तलोकाप्तिम् अथो प्रतिष्ठाम् गुहायाम् निहितम् विद्धि ।

[शा०] मृत्यो. प्रतिज्ञेयम्—प्र ते तुभ्यं प्रब्रवीमि; यत्त्वया प्रार्थित तदु मे मम वचसो निबोध बुध्यस्वैकाग्रमनाः सन्स्वर्ग्यं स्वर्गाय हितं स्वर्गसाधनमग्नि हे नचिकेत. प्रजानन्विज्ञातवानह सन्नित्यर्थ. । प्रब्रवीमि तन्निबोधेति च शिष्यबुद्धिसमाधानार्थं वचनम्

अधुनाग्नि स्तौति । अनन्तलोकाप्ति स्वर्गलोकफलप्राप्तिसाधनम् इत्येत् अथो अपि प्रतिष्ठाम् आश्रयं जगतो विराड्रूपेण, तमेतमग्नि मयोच्यमान विद्धि जानीहि त्वं निहित स्थित गुहाया विदुषां बुद्धौ निविष्टमित्यर्थः ।

स० व्या०— त्वत्प्रार्थितम् , ते-तुभ्यम् , प्रब्रवीमि-कथयामि, प्रेति— उपसर्ग व्यवहिताश्चेति छन्दसि व्यवहृतेऽपि प्रयुज्यते । तत् मे-ममोपदेशाद्, हे नचिकेतः, निबोध-जानीहि, यतोहि-स्वर्ग्यमग्निम्-पूर्वोक्तम् , प्रजानन् , बुध्यमानः, अनन्तलोकाप्तिम्-अनन्तस्य विष्णोः लोकस्य प्राप्तिम् "तद् विष्णो

परम पद सदा पश्यन्ति सूरय." इत्यादि अग्रे वक्ष्यमाणत्वात्, अथो, तत्प्राप्त्य नन्तरम् प्रतिष्ठामपुनरावृत्तिरूप च लभते इति शेष , इति एव त्वम् गुहायाम्-हृदयमध्ये, निहितम्—प्रतिष्ठितम् विद्धि-जानीहि ।

हिन्दी शब्दार्थ--प्रजानन् = ठीक से जानते हुए। तत् = उस अग्नि को। मे = मुझसे निबोध = जान लो। अनन्तलोकाप्तिम् = स्वर्ग लोक की फल प्राप्ति का साधन। प्रतिष्ठाम् = आधारभूत, विराट् रूप से जगत् के आश्रय, गुहायाम् = अन्त· करण मे। निहितम् = निविष्ट। विद्धि = जानो।

भावार्थ—यम ने कहा कि हे नचिकेता तुम्हारे प्रार्थित उस पूर्वोक्त स्वर्ग्य अग्नि का मैं वर्णन करता हूँ, उसे ध्यान पूर्वक समझो, जिसको जानने से अनन्त श्री विष्णुलोक की प्राप्ति हाती है जो वेद मे तद्विष्णोः परम पदम्' इत्यादि से कहा गया है, उसे तुम अत्यन्त अन्तः हृदय देश मे निहित जानो।

14 (Yama said) Be attentive and follow me O Nachiketa ! having a good knowledge I will speak to you of that fire which leads to heaven and which is the support of the world is found in the intellect or within the heart of learned.

अग्निविद्या का उपदेश

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै
या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्त-
मथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥१५॥

परिच्छेद—लोकादिम् , अग्निम् , तम् , उवाच, तस्मै, याः, इष्टकाः, यावतीः, वा, यथा, वा, । स, च, अपि, तत् , प्रति, अवदत् , यथा, उक्तम् , अथ, अस्य, मृत्युः, पुनः, आह, तुष्ट· ।

अन्वय—(यमः) तस्मै लोकादिम् तम् अग्निम् उवाच याः यावतीः वा

इष्टका' यथा वा सः च अपि तत् यथोक्तम् प्रत्यवदत् अथ मृत्युः अस्य तुष्टः सन् पुनः एव आह ।

[शा०] इद श्रुतेर्वचनम्—लोकादि लोकानामादि प्रथमशरीरित्वादग्नि त प्रकृतं नचिकेतसा प्रार्थितमुवाचोक्तवान् मृत्युस्तस्मै नचिकेतसे। किं च या इष्टकाश्चेतव्या. स्वरूपेण, यावतीर्वा सख्यया, यथा वा चीयतेऽग्निर्येन प्रकारेण सर्वमेतद् उक्तवानित्यर्थः। स चापि नचिकेतास्तन्मृत्युनोक्त यथावत्प्रत्ययेनावदत्प्रत्युच्चारितवान्। अथ तस्य प्रत्युच्चारणेन तुष्ट सन्मृत्यु पुनरेवाह वरत्रयव्यतिरेकेणान्य वर दित्सुः।

स० व्या.—लोकस्य, आदिम् कारणभूतम् स्वर्ग्यमिति यावत्-तमग्निं तस्मै-नचिकेतसे उवाच-कथितवान्, अग्निवर्णन प्रकारमेवाहयमः—इष्टका-यादृशलक्षणा इष्टका यावती' यत् सख्यापरिमिता'-अत्र यावत्य -इतिरूपस्य छान्दसः पूर्वसवर्णः यथा वा-येनप्रकारेण चेतव्या इति सर्वमुक्तवान्। अत्वा च स नचिकेता तत्-अग्निविद्यो पदेश तथैवानूदितवान् इत्याह-प्रत्यवदत् इति। शिष्यस्येतादृशग्रहणधारण सामर्थ्यं दृष्ट्वा सन्तुष्ट सन् गुरुः यमः प्रसन्नः सन् मृत्युः—यम पुनः आह-उवाच।

हि० श०—तस्मै = नचिकेता के लिए। लाकादिम्=लोक के आदि कारण भूत। तं प्रकृतम्=अग्नि को। इष्टका=ईंटें। यावती =जितनी। यथोक्तम्=जैसा यमराज ने कहा था वैसाही। प्रत्यवदत् = प्रत्युच्चारण किया। तुष्टः=प्रसन्न। आह = कहा।

भावार्थ—इस के अनन्तर यम ने नचिकेता के लिए उस पूर्वोक्त स्वर्ग्य अग्नि का जो कि लोक का हेतु भूत है। तथा उस अग्निके चयनमें जैसी और जितनी ईंटे होती हैं और किस प्रकार उनका चयन किया जाता है, इन सभी का उपदेश किया। मेधावी नचिकेता ने उसे तत्काल समझकर ज्यों का त्यों उसका अनुवाद करके यम को सुना दिया। इसपर शिष्य की प्रतिभा से सन्तुष्ट होकर यमराज फिर, नचिकेता से बोले।

वि०—यहाँ आचार्यपरम्परागत गुरु-शिष्यवत् उपदेश मे यमा ने आचार्य रूप में उपदेश दिया हैं। इस प्रकार नर-नारायण की तरह परमदेव

विश्व नियन्ता यम ब्रह्मस्वरूप के परतत्त्व के उपदेष्टा हुए, यही इस उपनिषद् श्रुति का परमार्थ तत्त्व समझना चाहिए।

15 Death told him every thing of the fire, the source of heaven, he explained the kind and number of bricks required to perform the altar and also the manner of arraging for fire etc And Nachikata two repeated word by word as he had been told Death became satisfied and pleased and then said again

नचिकेता के नामपर अग्निका नामकरण

सन्तुष्ट होकर यम ने पुनः नचिकेता से कहा—

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा
वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः
सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥१६॥

पदच्छेद—तम् अब्रवीत्, प्रीयमाणः, महात्मा, वरम्, तव, इह, अद्य, ददामि, भूयः, तव, एव, नाम्ना, भविता, अयम्, अग्निः, सृङ्काम्, च, इमाम्, अनेकरूपाम्, गृहाण ॥ १६ ॥

अन्वय—प्रीयमाणः महात्मा तम् अब्रवीत् तव अद्य इह भूयः वरं ददामि। अयम् अग्निः तव एव नाम्ना भविता इमा च अनेकरूपा सृङ्का गृहाण।

[शा०] कथम्—त नचिकेतसमब्रवीत्प्रीयमाणः शिष्ययोग्यता पश्यन्प्रीयमाणः प्रीतिमनुभवन्महात्माक्षुद्रबुद्धिर्वरं तव चतुर्थमिह प्रीतिनिमित्तमद्येदानी ददामि भूयः पुनः प्रयच्छामि। तवैव नचिकेतसो नाम्ना विधानेन प्रसिद्धो भविता मयोच्यमानोऽयमग्निः। किं च सृङ्कां शब्दवतीं रत्नमयीं मालामिमामनेकरूपां विचित्रां गृहाण स्वीकुरु। यद्वा सृङ्काम् अकुत्सितां गतिं कर्ममयीं गृहाण। अन्यदपि कर्मविज्ञानमनेकफलहेतुत्वात्स्वीकुर्वित्यर्थः।

सं० व्या०—प्रीयमाणः-सन्तुष्टमनाः महात्मा-महान्-प्रकृतेः पर आत्मा यस्य स यमदेवः तम्-नचिकेतसम् अकथितञ्च इति वच धातुयोगे कर्मसज्ञा संम्प्रदानस्येति, बोध्यम्। अब्रवीत् उवाच इह-अस्मिन् देशे अद्य-अस्मिन्काले भूयः पुनः तव-तुभ्य वर-वरदान ददामि। अतोऽग्रिम चतुर्थवर ददामीति तत्त्वम्किमित्याह-अग्निरयम् तवैव नाम्ना भविता (नाचिकेताग्निरिति) नाम्ना-प्रसिद्धो भविता इति, इमो, अनेकरूपाम्-विचित्राम्-सृङ्का-शब्दवती रत्न-मालाम गृहाण स्वीकुरु इत्यर्थ ।

हि० श०—प्रीयमाण.=प्रसन्न होकर। महात्मा=यमराज। तव अद्य=तुम्हे आज। भूयः=फिर। अनेकरूपा=विचित्र रूप वाली। शृङ्काम् रत्नमाला-वाली। गृहाण=ग्रहण करो।

भावार्थ—प्रसन्न होकर उस महापुरुष यम ने उस नचिकेता को पुनः यह चतुर्थ वरदान दिया कि यह परमार्थ रूप अग्नि तुमारे नाम से ही प्रसिद्ध होगी, नाचिकेताग्नि शास्त्रों मे प्रसिद्ध होगी यह भाव है। जो विचित्र रूप वाली और शब्द करनेवाला रत्नमालावती रूप से व्यक्त होगी, ऐसी अग्नि को तुम ग्रहण करो।

वि०—वेदान्त मे इस अग्नि का वर्णन होने से कर्मकाण्ड से सम्बन्धित अग्नि से यह पृथक् अग्नि है जिसका स्थान हृदय देश है जिसका वर्णन पूर्व मे किया जा चुका है।

16 Being delighted the high souled-yama said to Nachiketa "Now you are granted an additional boon with my favour to you this fire will will be famous by your name from to-day And so accept even this garland of various colours

अग्निचयन का फल

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धि
त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥१७॥

पदच्छेद—त्रिणाचिकेतः, त्रिभिः, एत्य, सन्धिम्, त्रिकर्मकृत्, तरति,

जन्ममृत्युः, ब्रह्मजज्ञम्, देवम्, ईड्यम्, विदित्वा, निचाय्य, इमाम्, शान्तिम्, अत्यन्तम्, एति ।

अन्वय—त्रिणाचिकेतः त्रिभिः सन्धिम् एत्य त्रिकर्मकृत् (सन्) जन्ममृत्यू तरति (स) ब्रह्मजज्ञम् ईड्यम् देव विदित्वा निचाय्य (च) इमाम् अत्यन्तम् शान्तिम् एति ।

[शा०] पुनरपि कर्मस्तुतिमेवाह—त्रिणाचिकेतस्त्रिःकृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो येन स त्रिणाचिकेतस्तद्विज्ञानस्तदध्ययनस्तदनुष्ठानवान्वा । त्रिभिर्मातृपित्राचार्यैरेत्य प्राप्य सन्धिं सन्धानं सम्बन्धं मात्राद्यनुशासनं यथावत्प्राप्नोत्येतत् । तद्धि प्रामाण्यकारणं श्रुत्यन्तराद् अवगम्यते यथा "मातृमान्पितृमानाचार्यवान्ब्रूयात्" (बृ० उ० ४ । १ । २) इत्यादेः । वेदस्मृतिशिष्टैर्वा प्रत्यक्षानुमानागमैर्वा, तेभ्यो हि विशुद्धिः प्रत्यक्षा, त्रिकर्मकृदिज्याध्ययनदानानां कर्ता तरत्यतिक्रामति जन्ममृत्यू । किं च ब्रह्मजज्ञं ब्रह्मणो हिरण्यगर्भाज्जातो ब्रह्मजः । ब्रह्मजश्चासौ ज्ञश्चेति ब्रह्मजज्ञः सर्वज्ञो ह्यसौ । तं देवं द्योतनाज्ज्ञानादिगुणवन्तमीड्यं स्तुत्यं विदित्वा शास्त्रतो निचाय्य दृष्ट्वा चात्मभावेनेमां स्वबुद्धिप्रत्यक्षां शान्तिम् उपरतिमत्यन्तमेत्यतिशयेनैति । वैराजं पदं ज्ञानकर्मसमुच्चयानुष्ठानेन प्राप्नोतीत्यर्थः ।

संस्कृत व्याख्या—त्रिणाचिकेतः-त्रिःकृत्वा नाचिकेतोऽग्निः चितो येन सः त्रिणाचिकेतः त्रिकर्मकृत्-यज्ञाध्ययनदानानि कृतानि येन स, पाकयज्ञ-हविर्यज्ञ-सोमयज्ञ इति यज्ञत्रयकर्त्ता वा त्रिकर्मकृत् त्रिभिः-त्रिभिरग्निभिः त्रिभिरनुष्ठितैः अग्निभिः सह मातृपित्राचार्यैः सह वा वेदस्मृतिशिष्टैः वा सह सन्धिं-सन्धानं परमात्मोपासनेन सम्बन्धमेत्य-प्राप्य जन्ममृत्यू तरति,, करोति तथा न पुनर्न जायते, इत्युक्तप्रकारेणेति ब्रह्मजज्ञम् ब्रह्मणः जातः, ब्रह्मजः ब्रह्मजश्चासौ ज्ञश्चेति ब्रह्मजज्ञः तं, ब्रह्मजज्ञशब्दो जीवात्मपरः इति 'विशेषणाच्च' (ब्र० सू० १।२।१२) इति सूत्रे भगवता व्यासेनोक्तः देवं-परमात्मानं ईड्यं-स्तुत्य-स्तुत्यर्हं विदित्वा-सम्यक् ज्ञात्वा निचाय्य स्वात्मानं ब्रह्मात्मकं साक्षात्कृत्य इमां-त्रिकर्मकृत्तरति इत्यादि पूर्वकथितं संसाररूपानर्थशान्तिमत्यन्तमेति प्राप्नोति ।

हि० श०—त्रिणाचिकेतः = तीन बार नाचिकेताग्नि। त्रिभिः = माता-पिता और आचार्य, त्रिकर्मकृत् = यज्ञ, वेदाध्ययन, दान। तरति = तर जाता है। ब्रह्मजज्ञम् = ब्रह्मात्मक। ईड्यम् = स्तुति करने योग्य। विदित्वा = जानकर, निचाय्य = देखकर। एति = प्राप्त होता है।

भावार्थ—इस नाचिकेताग्नि का तीन वार चयन करने वाला और यज्ञ अध्ययन दान रूप कर्म, अथवा पाकादि त्रियज्ञ करने वाला, माता पिता आचार्य का सत्यकार अथवा वेदस्मृतिशिष्ट अथवा तीनों अग्नि से अनुष्ठित अग्नि से परमात्मा की उपासना से सम्बन्ध को प्राप्त करने वाला इस शिष्ट को मानने वाला जन्म मरण रूप उपद्रव से तर जाता है, और जीवात्माको ब्रह्मात्मक जानकर उस परमात्माको जो सर्वथा स्तुति के योग्य हैं, अच्छी प्रकार जानकर तथा पूर्वोक्त 'त्रिकर्मकृत् तरति' इस पूर्व वाक्यार्थ को समझकर जीव अत्यन्त शान्ति को प्राप्त होता है।

विशेष—यह मन्त्र कर्म और ज्ञान दोनों की स्तुति करता है। इसकी व्याख्या में भी भिन्न-भिन्न आचार्यों की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से है यहाँ प्रायः समन्वय की दृष्टि से निर्देश किया गया है।

17 Yama said. "One, who being connected with the three performes Nachiketa fire thrice and alsodes three kinds of duties, over-comes birth and death He who have learnt and realised that omnicient onee (Agni) born of Brahma attains the perfect peace thoroughly

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा
य एवं विद्वाँश्चिनुते नाचिकेतम्।
स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१८॥

पदच्छे—त्रिणाचिकेतः, त्रयम्, एतद्, विदित्वा, यः, एवम्, विद्वान्, चिनुते, नाचिकेतम्, सः, मृत्युपाशान्, पुरतः, प्रणोद्य, शोकातिगः, मोदते, स्वर्गलोके ॥१८॥

अन्वय—यः त्रिणाचिकेतः विद्वान् एतत् त्रयम् विदित्वा नाचिकेतसम्

चिनुते सः पुरतः मृत्युपाशान् प्रणोद्य शोकातिगः (सन्) स्वर्गलोके मोदते ।

[शा०] इदानीमग्निविज्ञानचयनफलम् उपसहरति प्रकरण च—त्रिणाचिकेतस्त्रय यथोक्त या इष्टका यावतीर्वा यथा वेत्येतद् विदित्वा-वगत्य यश्चैवमात्मरूपेण अग्नि विद्वाश्चिनुते निवर्तयति नाचिकेतमग्नि क्रतु स मृत्युपाशान् अधर्माज्ञानरागद्वेषादिलक्षणान् पुरत. अग्रतः पूर्वमेव शरीरपातात् इत्यर्थ., प्रणोद्यापहाय शोकातिगो मानसैर्दु. खैर्वर्जित इत्येतत् मोदते स्वर्गलोके वैराजे विराडात्मस्वरूपप्रतिपत्त्या ।

स० व्याख्या—त्रिणाचिकेतः-पूर्वोक्तः, एतत्त्रयम्-ब्रह्मजज्ञ , देवमीड्य, त्रिभिरेत्य सन्धिमों इति पूर्वमन्त्रनिर्दिष्टार्थरूपम्विदित्वा-सम्यग्ज्ञात्वा यः एव-एतादृशार्थत्रयानुसन्धानपूर्वकनाचिकेतम्—नाचिकेताग्नि चिनुते चयनं करोति स मृत्युपाशान्-रागद्वेषादिलक्षणान् पुरतः-शरीरपातात्पूर्वमेव प्रणोद्य-अनादृत्य (जीवदशायामेव रागद्वेषादिरहित सन्) शोकातिग· सासारिक-शोकान् अतिक्रम्य स्वर्गलोके-मोदते आनन्दभाग् भवति ।

हि० श०—विदित्वा = जानकर । चिनुते = चयन करता है । पुरतः = पहले ही । मृत्युपाशात् = मृत्यु के बन्धन से । प्रणोद्य = अतिक्रमण कर । मोदते = प्रसन्न होता है ।

भावार्थ—पूर्व कथितार्थ त्रिणाचिकेत पुरुष पूर्वमन्त्र मे कहे हुए उन तीनों पदार्थो-ब्रह्मजज्ञ देवमीड्य और त्रिभिरेत्य सन्धि इत्यादि रूप को अच्छी तरह जानकर जो नाचिकेत अग्नि को चयन करता है वह पुरुष मरणादि शोक को अतिक्रमण करके आवागमन रहित स्वर्गलोक मे प्राप्त होकर आनन्द का भागी होता है ।

विशेष—इस मन्त्रार्थ मे पूर्व मन्त्र का स्पष्टीकरण किया गया है ।

19. He who after getting the knowledge of building up the sacrifice Altar, performes three times the Nachiketa-fire, becomes free from the bondage of death and crossing over sorrow rejoices in heaven.

[योवाऽप्येतां ब्रह्म जज्ञात्म भूतां
चितिं विदित्वा चिनुते नचिकेता।
स एव भूत्वा ब्रह्म जज्ञात्म भूतः
करोति तद् येन पुनर्न जायते।]

पदच्छेद—यः, वा, अपि, एताम्, ब्रह्मजज्ञात्मभूताम्, चितिम्, विदित्वा, चिनुते, नचिकेतम्, स, एव, भूत्वा ब्रह्मजज्ञात्मभूतः, करोति, तत् येन, पुनः, न, जायते।

संस्कृत व्याख्या—यः एता-चितिं ब्रह्मजज्ञात्मभूताम् जीवात्मान-ब्रह्मात्मक-भूता विदित्वा-अनुसन्धाय नाचिकेत-अग्नि चिनुते, स ब्रह्मजज्ञात्मभूतो भूत्वा तत्-तादृशं कर्म करोति, येन पुनर्न जायते, अपुनर्भवपद प्राप्नोति।

हि० श०—एता चितिम् = इस कथित चिति को। ब्रह्मजज्ञात्मभूताम् = ब्रह्मात्मक। विदित्वा = जानकर, स्वरूप का अनुसन्धान करके। ब्रह्मजज्ञात्म भूतः = ब्रह्मरूप। भूत्वा=होकर। पुनः = फिर। जायते = पैदा होता है, अर्थात् मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

भावार्थ—जो पुरुष इस कथित चिति को ज्ञानात्मरूप से स्व-स्वरूप का ब्रह्मात्मक अनुसन्धान करके चयन करता है, वह वैसा ही होकर ऐसा कर्म करता है जिससे पुनरागमन रहित मोक्ष पद को प्राप्त कर सके।

विशेष—इस मन्त्र को कुछ आचार्यों ने प्रक्षिप्त मानकर व्याख्या नहीं की किन्तु यह मन्त्रभाग मे मिलता है, इससे यहाँ व्याख्या की गयी है।

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो
तमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनास-
स्तृतीय वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥१९॥

पदच्छेद—एष., ते, अग्नि, नचिकेतः, स्वर्ग्य, यम्, अवृणीथा, द्वितीयेन, वरेण, एतम्, अग्निम्, तव, एव, प्रवक्ष्यन्ति, जनास तृतीयम्, वरम्, नचिकेतः, वृणीष्व।

अन्वय—हे नचिकेतः एष ते स्वर्ग्यः अग्नि' य द्वितीयेन वरेण अवृणीथाः जनासः एतम् अग्निम् तव एव नाम्ना प्रवक्ष्यन्ति हे नचिकेतः तृतीय वर वृणीष्व।

[शा०] एष ते तुभ्यमग्निर्वरो हे नचिकेत स्वर्ग्य स्वर्गसाधनो यमग्नि वरमवृणीथा प्रार्थितवानसि द्वितीयेन वरेण सोऽग्निर्वरो दत्त इत्युक्तोपसहार। किञ्चैनमग्नि तवैव नाम्ना प्रवक्ष्यन्ति जनासो जना इत्येतत्। एष वरो दत्तो मया चतुर्थस्तुष्टेन। तृतीय वर नचिकेतो वृणीष्व। तस्मिन्ह्यदत्त ऋणवानहमित्यभिप्राय.।

स० व्या०—हे नचिकेत', एषोऽग्निः स्वर्ग्य -स्वर्ग साधनभूत उपदिष्ट- इति वाक्यशेष', यम् अग्निम् द्वितीयेन वरेण अवृणीथाः, एतम अग्निम् जनास -जनाः-छन्दसि असुगागम, तव एव नाम्ना प्रवक्ष्यन्ति-कथयिष्यन्ति, अतः परम, तृतीयम् वरम, वृणीष्व याचस्व।

हि० श०—स्वर्ग्य' - स्वर्ग का साधन। अनुवृणीथा. = वरदान मे पाये हो। प्रवक्ष्यन्ति = कहेंगे। वृणीष्व = मागा, याचना करो।

भावार्थ—हे नचिकेता यह अग्नि स्वर्ग का साधन है जिसका मैंने उपदेश किया है, जिस अग्नि का द्वितीय वरदान म तुमने वरण किया। इस अग्नि को मनुष्य तुम्हारे नाम से ही कहेंगे, इसके बाद अब तुम तृतीय वर की याचना करो।

इसके अनन्तर नचिकेता ने अत्यन्त अभीष्ट तृतीय वर को मागते हुए आगे कहा।

19 O Nachiketa this told to you is about the fire (Sacrifire) the source of heaven as asked in your second boon, People will call this fire after your name Now what is your third boon ?

तृतीय वर (आत्म रहस्य) की प्रार्थना

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥२०॥

पद०—या, इयम्, प्रेते, विचिकित्सा, मनुष्य, अस्ति, इति, एके, न,

अयमस्तीति च एके, एतद्, विद्याम्, अनुशिष्टः, त्वया, अहम्, वराणाम्, एष. वरः तृतीयः ।

अन्वय—मनुष्ये प्रेते या इय विचिकित्सा एके (आहुः) अस्ति इति एके अय नास्ति इति च (आहुः) त्वया अनुशिष्टः एतत् विद्याम् एष. वराणाम् तृतीयः वर ।

[शा०] एतावद्ध्यतिक्रान्तेन विधिप्रतिषेधार्थेन मन्त्रब्राह्मणेनावगन्तव्यं यद्वरद्वयसूचितं वस्तु । न आत्मतत्त्वविषययाथात्म्यविज्ञानम् । अतो विधिप्रतिषेधार्थविषयस्यात्मनि क्रियाकारकफलाध्यारोपलक्षणस्य स्वाभाविकस्याज्ञानस्य संसारबीजस्य निवृत्त्यर्थं तद्विपरीतब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं क्रियाकारकफलाध्यारोपणलक्षणशून्यम् आत्यन्तिकनिःश्रेयसप्रयोजनं वक्तव्यमिति उत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते । तमेतमर्थं द्वितीयवरप्राप्त्याप्यकृतार्थत्वं तृतीयवरगोचरमात्मज्ञानमन्तरेण इत्याख्यायिकया प्रपञ्चयति— यत पूर्वस्मात्कर्मगोचरात्साध्यसाधनलक्षणादनित्याद्विरक्तस्य आत्मज्ञानेऽधिकार इति तन्निन्दार्थं पुत्राद्युपन्यासेन प्रलोभनं क्रियते ।

नचिकेता उवाच तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्वेत्युक्त सन्— येयं विचिकित्सा संशय प्रेते मृते मनुष्येऽस्तीत्येकेऽस्ति शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिव्यतिरिक्तो देहान्तरसम्बन्ध्यात्मेत्येके नायम् अस्तीति चैके नायमेवंविधोऽस्तीति चैकेऽतश्चास्माकं न प्रत्यक्षेण नापि वानुमानेन निर्णयविज्ञानमेतद्विज्ञानाधीनो हि परः पुरुषार्थ इत्यत एतद्विद्या विजानीयामहम् अनुशिष्टो ज्ञापितस्त्वया । वराणाम् एष वरस्तृतीयोऽवशिष्ट ।

स० व्याख्या—प्रेते (सति) मनुष्य-मृते सति मनुष्ये या, सामान्य रूपेण सर्वजनप्रसिद्धा, इयम्-एतादृशी, विचिकित्सा-संशय भवति इति शेष. । अयम्-आत्मा शरीरात् पृथक् कश्चित् अस्ति इति एके-आचार्याः वदन्ति एके-केचन न-चैवास्ति शरीराद् भिन्नः कोपि आत्मपदार्थः इति वदन्ति । अतः त्वया-भवता अनुशिष्ट-उपदिष्टः अहम् , एतद्विद्याम्-जानीयाम्, इति वराणाम् मध्ये एषः तृतीय. वरः मह्यं दातव्य इति शेषः ।

हि० श०—मनुष्ये = जीव मे । प्रेते = मरने पर । विचिचित्सा = सदेह । अयम् = आत्मा । एके = दूसरे । अनुशिष्टः = शिक्षित हो । विद्याम्=ज्ञान लू ँ ।

भावार्थ—मनुष्यों के मर जाने पर जो प्राय: सभी लोगों को प्रसिद्ध यह संशय आत्मा के विषय में होता है, उस विषय मे किसी आचार्य का मत है कि शरीर के अतिरिक्त अविनाशी अनश्वर जरामरणरहित आत्मा है। गीता मे भगवान् कृष्ण कहते हैं—

"न जायते म्रियते वा कदाचित् नाय भूत्वा भविता वा न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे"। इति।। गीता के द्वितीयाध्याय में देखिए। और कोई तो यह कहते हैं कि शरीरातिरिक्त आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है, इसी से चार्वाक मत का प्रादुर्भाव हुआ इसके मूल उपदेष्टा साक्षात् विद्या अधिष्ठाता बृहस्पति जी ही हैं। "भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमन कुतः"। इत्यादि कहा जाता है। इसलिए हे देव आप ऐसे परमोत्कृष्ट ज्ञानी से उपदेश को प्राप्त करके हम यह जानना चाहते हैं कि वास्तव मे यह आत्म विषयक तात्त्विक विचार क्या है? अतः वरो मे तृतीय वरदान से हम आत्म विषयक उपदेश चाहते हैं।

विशेष—यहा से लेकर आगे ब्रह्मज्ञान का प्रकरण आरम्भ होता है जो उपनिषद् शास्त्र की अपूर्व देन है। इस विषय मे सम्प्रदाय भेद से आचार्यों के भिन्न-भिन्न व्याख्यान हैं। हमने मौलिक शब्द के आधार पर सामान्य व्याख्यान किया है।

ऐसा सुनकर श्री यम ने नचिकेता को ब्रह्म ज्ञान का अधिकारी न समझकर इस वरदान को न देकर उस विषय की अति गहनता को समझाते हुए कहा—

20 After the death of a man some says "self exists" and others say "It does not exist"—I wish to know what is right under your instruction And this is my third and last boon.

अन्य वर मागने का आग्रह

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा
न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥२१॥

पद०—देवैः अत्र, अपि, विचिकित्सितम, पुरा, न, हि सुज्ञेयम्. अणुः

एषः, धर्मः । अन्यम्, वरम्, नचिकेतः, वृणीष्व, मा, मा, उपरोत्सीः अति मा सृजैनाम् ।

अन्वय—देवैरपि अत्र पुरा विचिकित्सितम् हि (इदम्) न सुज्ञेयम् एषः धर्मः अणुः नचिकेतः अन्य वर वृणीष्व मा मा उपरोत्सीः मा एनम् अतिसृज ।

[शा०] किमयमेकान्ततो निःश्रेयससाधनात्मज्ञानार्हो न वेत्येतत्परीक्षणार्थमाह—देवैरप्यत्रैतस्मिन्वस्तुनि विचिकित्सितं संशयितं पुरा पूर्वं न हि सुज्ञेयं सुष्ठु ज्ञेयं श्रुतमपि प्राकृतैर्जनैर्यतोऽणु सूक्ष्म एष आत्माख्यो धर्मोऽतोऽन्यमसंदिग्धफलं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मा मोपरोत्सीरुपरोधं मा कार्षीरधमर्णम् इवोत्तमर्णः अतिसृज विमुञ्च एनं वरं मा मां प्रति ।

सं० व्याख्या—अत्र-अस्मिन् आत्मविषये, देवैरपि पुरा, विचिकित्सितम्, संशयः कृतः, यतो हि अणुः-अतिसूक्ष्मः, एषो धर्मः एवम्, न हि सुज्ञेयम्-सरलतया ज्ञातु शक्यम् । अत एव हे नचिकेतः एनं परित्यज्य, अन्य, वरम्, वृणीष्व-याचस्व, मा मा, उपरोत्सीः अस्मिन् वरे मा आग्रहं कुरु । एनम् वर, मा मा सृज ।

हि० श०— पुरा = प्राचीन काल मे । विचिकित्सितम् = संशय किया है । इदम् = यह (रहस्य) । सुविज्ञेयम्=आसानी से न जानने योग्य अणुः = सूक्ष्म । उपरोत्सीः = आग्रह न करो । अतिसृज = त्याग दो ।

भावार्थ – इस आत्मा के विषय मे पूर्व काल मे देवताओं ने भी संशय किया था, किन्तु अत्यन्त सूक्ष्म होने से किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे थे । इसलिए यह धर्म सरलतया जानने योग्य नहीं है । इस कारण हे नचिकेतः तुम अन्य वरदान माग लो । हमारे ऊपर इस विषय के लिए अधिक आग्रह मत करो । इसे हमारे लिए छोड़ दो ।

विशेष—ईशोपनिषद मे लिखा है कि "नैव देवा आप्नुवन्" । देवताओं से दुर्गम इस आत्मतत्त्व को श्री यम ने बताया, यह बात नहीं कि यमदेव नचिकेता से वचना करने के लिए ऐसा कहे हों । देव लोग मर्त्य प्राणी को ठगते नहीं बल्कि कृपालुता प्रगट करते हैं ।

21. In ancient times even the gods had this doubt, for being mystic this is not easily comprehensible (Therefore) O Nachiketa without giving any kind of pressure on me. Leave off this boon and ask for another.

नचिकेता की दृढता

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल
त्वं च मृत्यो यन्न सुज्ञेयमात्थ ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो
नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥२२॥

पद०—देवैः, अत्र, अपि, विचिकित्सितम्, किल, त्व च मृत्यो, यत्, न, सुज्ञेयम, आत्थ, वक्ता, च, अस्य, त्वादृग्, अन्य. न, लभ्य', न, अन्यो, वरः, तुल्यः, एतस्य, कश्चित् ।२३।

अन्वय–अत्र देवैरपि विचिकित्सितम् हे मृत्यो त्व च यत् न सुविज्ञेयम् आत्थ अस्य वक्ता त्वादृक् अन्यः न लभ्यः एतस्य तुल्य अन्यः कश्चित् वरः न अस्ति ।

[शं० भा०] देवैरत्राप्येतस्मिन्वस्तुनि विचिकित्सित किलेति भवत एव नः श्रुतम् । त्वं च मृत्यो यद्यस्मान्न सुज्ञेयमात्मतत्त्वमात्थ कथयसि, अत पण्डितैरप्यवेदनीयत्वाद् वक्ता चास्य धर्मस्य त्वादृक्त्वत्तुल्य अन्यः पण्डितश्च न लभ्यः अन्विष्यमाणोऽपि । अय तु वरो नि श्रेयसप्राप्तिहेतु । अतो नान्यो वरस्तुल्य सदृशोऽस्त्येतस्य कश्चिदप्यनित्यफलत्वादन्यस्य सर्वस्यैवेत्यभिप्राय ।

स० व्याख्या—अत्र-अस्मिन्नात्मविषये, देवैरपि, विचिकित्सितम्-सशयितम् किल-निश्चयेन चेत्, मृत्यो-हे यमदेव त्वम् च-भवानपि यम्-विषयम्, सुज्ञेयम् सरलतया ज्ञातव्यम् नैव आत्थ-ब्रवीषि (अतो हेतो) अस्य दुर्ज्ञेयपदार्थस्य, वक्ता-व्याख्याता, त्वादृगन्यः-भवतोऽ यः नैव लभ्य'-प्राप्तव्यः, अतः, एतेनेदं स्पष्टतया प्रतिभाति, एतस्य तुल्यो वर -कश्चिदन्यो न, नास्तीति भावः ।

हि० श०—विचिकित्सितम् = संशय किया है। आत्थ = कहा। वक्ता= उपदेशक। त्वादृक् = तुम्हारे जैसा। लभ्यः = मिलने वाला।

भावार्थ—इस आत्म विषय में यदि देवताओं ने भी संशय किया और किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके और आप भी इसकी पुष्टि करते हुए कह रहे हैं कि यह प्रश्न सुज्ञेय नहीं है, तो फिर यह स्पष्ट हो गया कि इसका समाधान करने वाला आप जैसा अन्य हमको कोई नहीं मिलेगा, और इस वरदान के तुल्य अन्य कोई वरदान भी हमारे लिए हमारी दृष्टि में नहीं है।

इस प्रकार शिष्य की जिज्ञासा में दृढता देखकर कि यह आत्म विषय श्रवण का अधिकारी तो है, किन्तु वैषयिक भोग से यदि विरक्त नहीं तो भी ज्ञान प्राप्त होकर भी, स्रवतीन्द्रिय लोलुपात्, के अनुसार ज्ञान कच्चे घड़ो की तरह वह जायगा तो लौकिक विषयों का प्रलोभन देने पर भी यदि परीक्षा में उत्तीर्ण हो तब ही पूर्ण अधिकारी होगा।

इस प्रकार लौकिक भोग प्राप्ति का प्रलोभन देते हुए यमराज ने कहा—

22 Even the gods had doubt indeed and you too say that it is a not easily comprehensible matter, I, more over find no other master of this subject as you And so I think consequently there is no other comparable boon

यमराज द्वारा प्रलोभन

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व
बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व
स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥२३॥

पद०—शतायुष ,पुत्रपौत्रान्, वृणीष्व, वहून्, पशून्, हस्ति-हिरण्यमश्वान् भूमेः, महदायतनम्, वृणीष्व, स्वय च जीव, शरदः, यावद्, इच्छसि।

अन्वय—शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यम् अश्वान् (वृणीष्व) भूमेर्महदायतन वृणीष्व। स्वय च यावत् शरदः इच्छसि जीव।

[शा०] एवमुक्तोऽपि पुनः प्रलोभयन्नुवाच मृत्युः—शतायुष.—शतं

वर्षाण्यायूषि एषा ताञ्शतायुष पुत्रपौत्रान् वृणीष्व। किं च गवादिलक्षणान् बहून्पशून् हस्तिहिरण्य हस्ती च हिरण्य च हस्तिहिरण्यम् अश्वाश्च किं च भूमे पृथिव्या महद्विस्तीर्णमायतनमाश्रय मण्डल राज्य वृणीष्व किं च सर्वमप्येतद् अनर्थक स्वय चेदल्पायुरित्यत आह—स्वय च जीव त्व जीव धारय शरीर समग्रेन्द्रियकलाप शरदो वर्षाणि यावदिच्छसि जीवितुम् ।

स० व्याख्या—(हे नचिकेतः) शतायुषः-शतम्-शतवर्षाणि आयुः येषा तान्-तादृशान् पुत्रपौत्रान्, वृणीष्व-तथा चापरम्-बहून् पशून्, हस्तिनश्च हिरण्यम्-सुवर्णम् च, अश्वान् च एतान् सर्वान् पुनश्च भूमे:-महदायतनम्-पृथिव्या महद्भाग आयतनम् गृहम् च एव च एतेषा सर्वेषां भोगार्थम्-स्वस्य जीवन च, यावद्-यावन्त शरद. इच्छसि तावन्त जीव तावदायुः प्राणधारण कुरुष्व इत्येतान् सर्वान् याचस्व इति ।

हि० श०—शतायुषः = सौ वर्षो तक जीने वाले । वृणीष्व = मागो । हस्ति-हिरण्यम् = हाथी-सोना । महदायतनम् = विस्तृतमण्डल वाला । शरदः = वर्षों तक । जीव = जीते रहो ।

भावार्थ—यम कहते हैं, हे नचिकेत तुम सौ वर्ष के आयुष्य तक जीने वाले पुत्र पौत्रों को माग लो, बहुत पशु हाथी सुवर्ण और घोड़ा आदि को माग लो और बहुत लम्बी चौड़ी विस्तार भूमि और गृह मागो तथा जब तक जितने वर्ष के जीवन की इच्छा हो उतनी आयु को माग लो, किन्तु आत्म ज्ञान की चर्चा मत करो ।

विशेष—इससे यह स्पष्ट होता है कि ऐहलौकिक सकल भोग प्राप्ति से आत्म ज्ञान सर्वोपरि है । आगे और भी लौकिक पदार्थ को कहते हुए यमदेव बोले—

23 Pray for sons and grandsons bearing hundred years life Ask for many horses, elephants gold, ther animals, even a vast expanse of land yourself live long according to wish

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वर
वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च ।

महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि
कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥२४॥

पद०—एतत्, तुल्यम्, यदि मन्यसे, वरम्, वृणीष्व, वित्तम्, चिर-जीविकाम् च। महाभूमौ नचिकेत त्वम्, एधि, कामाना, त्वा, कामभाजम् करोमि।

अन्वय—एतत्तुल्यम् यदि (अन्य) वर मन्यसे (तम्) वृणीष्व वित्तं चिरजीविका च वृणीष्व हे नचिकेत. त्व महाभूमौ एधि (अह) त्वा कामाना कामभाज करोमि।

[शा०] एतत्तुल्यमेतेन यथोपदिष्टेन सदृशमन्यमपि यदि मन्यसे वरं तमपि वृणीष्व। कि च वित्त प्रभूत हिरण्यरत्नादि चिरजीविका च सह वित्तेन वृणीष्वेत्येतत्। कि बहुना महत्या भूमौ राजा नचिकेतस्त्वमेधि भव। कि चान्यत्कामाना दिव्याना मानुषाणा च त्वा त्वा कामभाज कामभागिन कामार्हं करोमि सत्यसकल्पो ह्यहं देव।

सस्कृत व्याख्या—नचिकेत.-हे नचिकेत. एतद्-आत्मज्ञानतुल्यम्—समानम् यदि अन्यद् वरम् मन्यसे-जानासि, तादृशम् वित्तम्-धनम्, चिरजीविकाम् बहुतकालपर्यन्तं जीविकासाधनमत्रमहाभूमौ त्वम् एधि-वर्तस्व-अर्थात् आधिराज्य साम्राज्य प्राप्नुहि, किमुत वक्तव्यम् त्वा-त्वाम् कामाना-अभिलाषाणा मनोनुकूलभोगकर्त्तृत्व करोमि इति।

हि० श०—एतत्तुल्यम् = इसके समान। महाभूमौ = विस्तृत पृथ्वी पर। भव = हो जाओ, शासक हो जाओ। त्वा = तुमको कामाना काम भाजम=भोगों को भोगने वाला। करोमि=कर देंगे।

भावार्थ—हे नचिकेत. इस आत्म ज्ञान के समान तुम जो जो लौकिक भोग समझो तादृश धन चिरकालीन जीविकासाधन, पृथ्वी का महान् साम्राज्य प्राप्त कर लो, तुमको सपूर्ण इच्छानुकूल भोग भोगने वाला कर देंगे और भी भोग का प्रलोभन देते हुए यम ने कहा।

24 Or ask for another boon which you think parallel to this If you want to have wealth with long life and even

to be the ruler of this vast land ask for that I will make you fit to enjoy of all according to wish

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके
सर्वान्कामाँश्छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या
न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥२५॥

पदच्छेद—ये, ये, कामाः, दुर्लभाः, मर्त्यलोके, सर्वान् कामान्, छन्दतः प्रार्थयस्व, इमाः, रामाः, सरथाः, सतूर्याः, न, हि, ईदृशाः, लम्भनीयाः, मनुष्यैः आभिः, मत्प्रत्ताभिः, परिचारयस्व, नचिकेत मरणाय, मा अनुप्राक्षीः ।

अन्वय—मर्त्यलोके ये ये कामा दुर्लभाः (तान्) सर्वान् कामान् छन्दतः प्रार्थयस्व । इमा सरथा सतूर्या रामा ईदृशाः मनुष्यैः न लम्भनीयाः हि मत्प्रत्ताभिः आभिः परिचारयस्व हे नचिकेतः मरणं मा अनुप्राक्षीः ।

शा०) ये ये कामा प्रार्थनीया दुर्लभाश्च मर्त्यलोके सर्वास्तान् कामाश्छन्दत इच्छातः प्रार्थयस्व । किं चेमा दिव्या अप्सरसो रमयन्ति पुरुषानिति रामाः सह रथैर्वर्तन्त इति सरथाः सतूर्याः सवादित्रास्ताश्च न हि लम्भनीयाः प्रापणीया ईदृशा एवंविधा मनुष्यैर्मर्त्यैरस्मदादिप्रसाद-मन्तरेण । आभिर्मत्प्रत्ताभिर्मया दत्ताभिः परिचारिणीभिः परिचारयस्व आत्मानं पादप्रक्षालनादिशुश्रूषां कारयात्मन इत्यर्थः । नचिकेतो मरणं मरणसम्बद्धं प्रश्नं प्रेतेऽस्ति नास्तीति काकदन्तपरीक्षारूपं मानुप्राक्षीर्मैवं प्रष्टुमर्हसि ।

संस्कृत व्याख्या—पुनरपि, हे नचिकेतः मर्त्यलोके अस्मिन्मरणधर्मिणि मनुष्यलोके ये ये-यावन्तः दुर्लभाः दुःखेन प्रापणीयाः कामा-मनोरथाः तान् सर्वान् छन्दतः—यथेच्छम्-प्रार्थयस्व-याचस्व, सरथाः सतूर्याः—वाहन-वाद्या-दिभिर्युक्ता· इमाः रामाः—स्वर्गिण्य अप्सरसः याचस्व हि-निश्चयेन ईदृशा

प्रार्थव्या मनोरथा मनुष्यैः-अन्यैः नैव लम्भनीया —प्रापणीया', अतः मत्प्रत्ताभि आभिः रामाभि.-अस्माभि दत्ताभि एताहशीभिः रमणीभिः, परिचारयस्व—सेवस्व किन्तु मरणम्-मरणात्परम् आत्मविपय मा-नैव अनु-प्राक्षी —अपृच्छः—प्रश्न मा कार्षी इत्यर्थः।

हि० श०—कामा'=भोग। छन्दतः = इच्छानुसार। प्रार्थयस्व=मागो। इमाः=ये। सरथाः=रथ-सहित। सतूर्या =बाजा सहित। रामा =रमण कराने वाली, अप्सराये ईदृशा.=इस तरह के। न लम्भनीयाः = नहीं प्राप्त होते। मत्प्रत्ताभि = मेरे दिये हुए मे। आभि.=इनसे। परिचारयस्व = सेवा कराइये मरणम् = मृत्यु के विषय मे। मा अनुप्राक्षीः = ऐसा मत पूछो।

भावार्थ—हे नचिकेत जितने मनोरथ इस मर्त्यलोक मे मनुष्यों से दुर्लभ हैं, उन सबको यथेच्छ तुम माँग लो, वाहन और बाजा के साथ स्वर्गीय अप्सराओं को प्राप्त कर लो। जो मनुष्यों से सदा अलभ्य हैं। हमारे से दी हुई उन रमणियों से सेवा करा लो किन्तु हे नचिकेतः मरने के बाद आत्मा के विषय का प्रश्न मत करो।

इस प्रकार यमराज ने नचिकेता की परीक्षा के लिए ही यह सब प्रलो-भन दिखाया था। इस पर प्राकृत पुरुष से अशक्य अत्यन्त उदारचेता नचि-केता यमराज से इस प्रकार बोला—

25. Yeu may pray for according to your choice, all these things that are desirable but not available on the earth for mortals Here are they. Women sitting in the chariots with the musical instruments, surely not found there on the earth for montals are ready to serve you But O Nachiketa do not ask me about death

नचिकेता की निरीहता

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैत-
त्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेज.।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥२६॥

पद०—श्वःभावाः, मर्त्यस्य, यद्, अन्तक! एतत्, सर्वेन्द्रियाणाम्

जरयन्ति तेजः। अपि सर्वम् जीवितम्, अल्पम् एव, तव एव वाह्यः तव, नृत्यगीते।

अन्वय—अन्तक (त्वदुक्ता भोगाः) श्वोभावाः मर्त्यस्य सर्वेन्द्रियाणाम् यत्तेजः एतत् जरयन्ति अपि सर्वम् जीवितम् अल्पम् एव तव वाहा नृत्यगीते तव एव (तिष्ठन्तु)।

[शा०] एवं प्रलोभ्यमानोऽपि नचिकेता महाह्रदवदक्षोभ्य आह—श्वो भवि यन्ति न भविष्यन्ति वेति संदिह्यमान एव येषां भावो भवनं त्वयोपन्यस्ताना भोगाना ते श्वोभावा। किं च मर्त्यस्य मनुष्यस्यान्तक हे मृत्यो यदेतत्सर्वेन्द्रियाणा तेजस्तज्जरयन्ति अपक्षयन्त्यप्सर प्रभृतयो भोगा अनर्थायैवैते धर्मवीर्यप्रज्ञातेजोयश प्रभृतीना क्षपयितृत्वात्। या चापि दीर्घजीविका त्वं दित्ससि तत्रापि शृणु। सर्वं यद्ब्रह्मणोऽपि जीवितमायुरल्पमेव किमुतास्मदादिदीर्घजीविका। अतस्तवैव तिष्ठन्तु वाहा रथादय तथा नृत्यगीते च।

म० **व्या०**—हे अन्तक—यमदेव श्वोभावा—श्वो—अग्रिमदिवस यावत् स्थिरस्वभावा सर्वेभावा—पदार्थाः, यद्मर्त्यस्य-मरणधर्मणो मानुषस्य एतत्-भवदुक्तम् भोग्यम् न सुखाय भवति किन्तु सर्वेन्द्रियाणाम्-तेजः जरयन्ति-नाशयन्ति। अपि च चिरायुषो विषये यदुक्तम् तदपि परार्धकालापेक्षया जीवितम् अल्पमेव-अत्यल्पमेव, अत एवत्-सर्वं भोग्यरूपम्, वाह्य-अश्वादयः नृत्यगाते—नाट्य गानं च तवैव अस्तु, नैतेन अस्माकं प्रयोजनम्।

हि० श०—अन्तक = यम। श्वोभावा = क्षणभगुर। यत्तेजः = जो तेज है। जरयन्ति=जीर्ण करते हैं। वाहाः = वाहन। नृत्यगीते=नाच गाना। तव= तुम्हारे ही रहे।

भावार्थ—हे यमराज! ये भोग "कल रहेंगे या नहीं" ऐसे (अनिश्चित) हैं और समग्र इन्द्रियों के तेज को जीर्ण करते हैं, यह सारा जीवन भी अल्प ही है, आपके (दिये हुए) वाहन तथा नृत्य गीतादि आप ही रखें (मुझे उनकी आवश्यकता नहीं है)।

विशेष - गीता मे स्वय भगवान् कृष्ण ने कहा है—

येहि सस्पर्शजा भोगा दु खयोनय एव ते। आद्यन्तवन्त कौन्तेय न तेषु

रमते बुधः । इति—अर्थात् लोक के सभी भोग्य दुःख की उत्पत्ति के स्थान हैं और अन्त होने वाले हैं ।

26. O yama ! all these things (enumenrated by you) have doubt in their existence, they waste away the activity of all the senses of man and (consequently) the life becomes sour So let these horses, songs and dances etc for yourself alone

आत्म ज्ञान के लिये आग्रह

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा ।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं
वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२७॥

पद०—न, वित्तेन, तर्पणीयः, मनुष्यः, लप्स्यामहे, वित्तम्, अद्राक्ष्म, चेत्, त्वा, जीविष्याम यावदीशिष्यसि, त्वम्, वर तु, मे, वरणीयः सः, एव ।

अन्वय--मनुष्यः वित्तेन न तर्पणीयः चेत् त्वा अद्राक्ष्म वित्त लप्स्यामहे यावत् त्वम् ईशिष्यसि (तावत्) जीविष्यामः मे वरस्तु स एव वरणीयः ॥

[शा०] न प्रभूतेन वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य । न हि लोके वित्तलाभ. कस्यचिन्तृप्तिकरो दृष्ट । यदि नामास्माक वित्ततृष्णा स्याल्लप्स्यामहे प्राप्स्यामहे इत्येतद्वित्तमद्राक्ष्म दृष्टवन्तो वय चेत्त्वा त्वाम् । जीवितमपि तथैव । जीविष्यामो यावद्याम्ये पदे त्वम् ईशिष्यमीशिष्यसे प्रभु स्या कथ हि मर्त्यस्त्वया समेत्याल्पधनायुर्भवेत् । वरस्तु मे वरणीय स एव यदात्मविज्ञानम् ।

संस्कृत व्याख्या—मनुष्यः, वित्तेन, न तर्पणीय —पूरणीयः, त्वा—त्वाम्-भवन्तम् अद्राक्ष्म-अपश्याम चेत्, वित्तम-धनम् लप्स्यामहे अर्थात् धनतु आनुषङ्गिकफलम् एवमभवद्दर्शनस्य, इदमपि, फल लभामहे, इत्याह-त्वम्, यावत् ईशिष्यसि-यावत्कालपर्यन्त यमलोकम, अनुशासिष्यसि तावत् कालपर्यन्त स्वेच्छया जीविष्यामः अतोहेतोः वरः, तु स एव आत्मविषयकमेव नान्य इति ।

हि० श०—वित्तेन = धन से। न तर्पणीय =तृप्त नहीं किया जा सकता। त्वा = आपको। अद्राक्ष्म = देख लिया। लप्स्यामहे = पा जाऊँगा। यावत् त्वम्=जब तक तुम। ईशिष्यसि = शासन करोगे।

भावार्थ—नचिकेता ने बड़ी ही बुद्धिमानी प्रदर्शन करते हुए कहा कि हे देव इस मर्त्यलोक में मनुष्य धन से तृप्त नहीं किया जा सकता और हमको आपका दर्शन हो जाने से आवश्यकतानुसार धन प्राप्त हो ही जायगा तथा आपके यमलोक के शासन करते हुए इच्छानुसार जीवन भी प्राप्त हो जायगा इसलिए वरदान तो मुझे वही आत्म-विषयक ही प्राप्त करना है अन्य तो आपके दर्शन का आनुषङ्गिक फल हैं और सभी फल अत्यन्त अकिञ्चित् कर हैं।

विशेष—श्रीमद्भागवत आदि में बहुत लिखा है—"न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति, हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाऽभिवर्द्धते" अर्थात् काम प्राप्ति से काम की शान्ति नहीं होती जैसे अग्नि में आहुति देने से ज्वाला और प्रज्वलित ही होती है न कि शान्त।

27 O Death ! man is not to be satisfied with wealth. When we have seen you we must get wealth and long life uptill your rule But the boon asked by me is only worth praying for

अजीर्यताममृतानामुपेत्य
जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदा-
नतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥

पदच्छेद—अजीर्यताम्, अमृतानाम्, उपेत्य, जीर्यन्, मर्त्यः, कुअधःस्थ, प्रजानन्-अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदान्, अतिदीर्घे, जीविते क रमेत।

अन्वय—क प्रजानन् जीर्यन् क्वधःस्थ मर्त्यः अजीर्यताम् अमृतानाम् उपेत्य वर्णरतिप्रमोदान् अभिध्यायन् अतिदीर्घे जीविते रमेत।

[शा०] यतश्च—अजीर्यतां वयोहानिमप्राप्नुवताममृतानां सकाशमुपेत्य उपगम्यात्मन उत्कृष्टं प्रयोजनान्तरं प्राप्तव्यं तेभ्य प्रजानन् उपलभ-

मान स्वय तु जीर्यन्मर्त्यो जरामरणवान्क्वध स्थ कु पृथिवी अधश्चान्त-रिक्षादिलोकापेक्षया तस्या तिष्ठतीति क्वध स्थ सन् कथमेवमविवेकिभि. प्रार्थनीय पु,वित्तहिरण्याद्यस्थिरं वृणीते ।

क्व तदास्थ इति वा पाठान्तरम् । अस्मिन्पक्षे चाक्षरयोजना । तेषु पुत्रादिष्वास्था आस्थिति तात्पर्येण वर्तन यस्य स तदास्थ. । ततोऽधिकतर पुरुषार्थ दुष्प्रापमपि प्रापिपयिषु क्व तदास्थो भवेन्न कश्चित्तद-सारज्ञस्तदर्थी स्यात् इत्यर्थ सर्वो ह्युपर्युपर्येव बुभूषति लोक. तस्मान्न पुत्रवित्तादिलोभैः प्रलोभ्योऽहम् । किं चाप्सर प्रमुखान्वर्णरतिप्रमोदानन-वस्थितरूपतयाभिध्यायन्निरूपयन्यथावत् अतिदीर्घे जीविते को विवेकी रमेत ।

संस्कृत व्याख्या—अजीर्यताम्-जरामरणादिशून्यानाम्, अमृतानाम्-मुक्तात्मनाम भवादृशाना स्वरूपम्-उपेत्य-सम्यग् ज्ञात्वा-अथवा भवादृशाना सङ्गतिमुपेत्य-प्राप्य जीयन्, मर्त्य-जरामरणादिधर्मा, कु-पृथिवी-तत्र अध तिष्ठति इति क्वध.स्थ अथवा अत्र पाठान्तरम्-क्व तदास्थः--जरामरणाद्युपप्लुत अत्रत्य विषये क्व-कथ आस्थावान् भवेत्, अत्रत्य-वर्णरतिप्रमोदान् सौन्दर्य ब्रह्मादिपर्यन्तभोग आमोद-प्रमोदाश्च, तान् सर्वान् अभिध्यायन्—चिन्तयन्—अस्थिरताम जानन्-अतिदीर्घे जीविते-बहुकालपर्यन्तजीवने क.-बुद्धिमान् रमेत-प्रीतिमान् भवेत् इति भाव ।

हि० श०—अजीर्यताम्=वृद्धावस्था-हीन । अमृतानाम् = अमरों के । उपेत्य = सगति प्राप्त कर । जीर्यन् = वृद्धावस्थावाला । मर्त्य = मरणशील । कु = पृथ्वी । अधः = (स्वर्ग से) नीचे । स्थ = स्थित । प्रजानन् = जानते हुए भी । अभिध्यायन्=चिन्ता करता हुआ । वर्णरतिप्रमोदान्=रूप रग, प्रम, आमोद, प्रमोद । अतिदीर्घे = लम्बे । जीविते = जीवन मे । को = कौन । रमेत् = रमेगा, लिप्त रहेगा ।

भावार्थ—जरा मरण आदि शून्य आपके समान मुक्तात्मा महापुरुषों की सङ्गति प्राप्त कर जन्म जरामरण आदि धर्मवाला स्वर्ग के नीचे की पृथिवी पर रहने वाला मर्त्यलोक का प्राणी अपनी स्थिति को जानकर भी यहाँ के पदार्थों मे कैसे अभिमान रखेगा और मर्त्यलोक का नश्वर

सौंदर्य नाना प्रकार का ब्रह्मलोक पर्यन्त का भोग और आनन्द के स्वरूप को ठीक-ठीक चिन्ता करता हुआ कौन ऐसा प्राणी बहुत दिन पर्यन्त यहाँ जीने का प्रेमी होगा, अर्थात् घृणा ही करेगा।

इस प्रकार सकल कामनाओं के प्रलोभन को अतिक्रमण करता हुआ नचिकेता पुनः बोला—

28 Having reached the place of immortals once what mortal is there who lives here on the earth but knows of higher goal will ever prefer worldly enjoyment ?

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो
यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥२९॥

पदच्छेद—यस्मिन्, इदम्, विचिकित्सन्ति, मृत्यो, यत्, साम्पराये, महति ब्रूहि, न. तत्, यः, अयम्, वरः मर्त्य अनुप्रविष्टः, न अन्य, तस्मात् नचिकेता, वृणीते।

मृत्यो यस्मिन् महति साम्पराये यत् इद विचिकित्सन्ति नः तद् ब्रूहि य अयम् गूढम् अनुप्रविष्ट वरः (विद्यते) नचिकेना. तस्मात् अन्यम् न वृणीते।

[शा०] अतो विहायानित्यैं कामैं प्रलोभनं यन्मया प्रार्थितम्—यस्मिन्प्रेत इद विचिकित्सन विचिकित्सन्ति अस्ति नास्तीत्येवप्रकार हे मृत्यो साम्पराये परलोकविषये महति महत्प्रयोजननिमित्ते आत्मनो निर्णयविज्ञान यत्तद्ब्रूहि कथय नोऽस्मभ्यम्। कि बहुना योऽयं प्रकृत आत्मविषयो वरो गूढ गहन दुर्विवेचन प्राप्तोऽनुप्रविष्ट। तस्माद्वरादन्यम-विवेकिभि प्रार्थनीयमनित्यविषय वर नचिकेता न वृणीते मनसापीति श्रुतेर्वचनमिति।

सस्कृत व्याख्या—हे मृत्यो, यमराज यस्मिन् महति साम्पराये-महद्भूते पारलौकिक इदम्विचिकित्सन्ति शका कुर्वन्ति, यः अयम्, गूढम्-अनुप्रविष्टः आत्मतत्वं सम्प्रविष्टः वरः, तस्माद् अन्यं वर नचिकेता नैव वृणीते-याचते।

हि० श०—यस्मिन् = जिस। महति = महान्। साम्पराये = परलोक सम्बन्धी आत्मज्ञान के विषय में। इदम् = यह। विचिकित्सन्ति = शंका करते हैं। नः = मुझसे। ब्रूहि=कहो। गूढम् = रहस्यमय। अनुप्रविष्ट.=आत्म तत्त्व में प्रविष्ट। तस्मात् = उससे (आत्मतत्त्व से) अन्यम् = दूसरा।

भावार्थ—हे यमदेव, जिस महान् स्वरूप वाले परलोक सम्बन्धी आत्मतत्व की शंका सब महान लोग भी करते आये हैं, जो आत्मतत्त्व अत्यन्त गूढ है, उसको छोड़ कर अन्य वरदान नचिकेता आप से नहीं माँग सकता।

29. O Death ; tell me about the existence of life after death about which (Self) people have doubt Apart from this, I never want to pray for any other boon than that of the mysterious one.

प्रथमाध्याये

द्वितीय वल्ली

यमने द्वितीय वल्ली मे प्रथम शिष्य की ऐहलौकिक ऐश्वर्य के विषय में परीक्षा लेकर उसमें उसे सर्वथा उत्तीर्ण समझ कर तथा मुमुक्षा विषयक उसकी स्थिरता निश्चल देखकर उपदेश देने के लिए मुमुक्षा की महिमा (महत्त्व) को इस प्रकार कहा—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-
स्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु
भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥

पदच्छेद—अन्यत्, श्रेय, अन्यत्, उत, एव, प्रेयः, उभे, नानार्थे, पुरुषम्, सिनीतः, तयोः, आददानस्य, साधु, भवति, हीयते, अर्थात्, यः, उ, प्रेयः, वृणीते ।

अन्वय—अन्यत् श्रेयः उत अन्यत् एव प्रेयः ते उभे नानार्थे (सती) पुरुष सिनीत. तयो श्रेयः आददानस्य साधु भवति उ सः अर्थात् हीयते य. प्रेयः वृणीते ।

[शा०] परीक्ष्य शिष्य विद्यायोग्यता चावगम्याह—अन्यत्पृथगेव श्रेयो निःश्रेयसं तथान्यदुताप्येव प्रेय प्रियतरमपि । ते प्रेयश्रेयसी उभे नानार्थे भिन्नप्रयोजने सती पुरुषमधिकृत वर्णाश्रमादिविशिष्टं सिनीतो बध्नीतस्ताभ्यामात्मकर्तव्यतया प्रयुज्यते सर्व. पुरुष । श्रेयप्रेयसोर्ह्यभ्युदयामृतत्वार्थी पुरुष प्रवर्तते अत श्रेय प्रेय प्रयोजनकर्तव्यतया ताभ्या बद्ध इत्युच्यते सर्व पुरुष ।

ते यद्यप्येकैकपुरुषार्थसम्बन्धिनी विद्याविद्यारूपत्वाद्विरुद्धे इत्यन्तरात्यागेनैकेन पुरुषेण सहानुष्ठातुमशक्यत्वात् तयोर्हित्वाविद्यारूपं प्रेयः

श्रेय एव केवलमाददानस्योपादानं कुर्वत. साधु शोभनं शिवं भवति। यस्त्वदूरदर्शी विमूढो हीयते वियुज्यतेऽस्मादर्थात् पुरुषार्थात् पारमार्थिकात्प्रयोजनान्नित्यात् प्रच्यवत इत्यर्थ.। कोऽसौ य उ प्रेयो वृणीत उपादत्त इत्येतत्।

संस्कृत व्याख्या—श्रेयः—अतिशयेन प्रशस्तः श्रेयः—अति प्रशस्त मोक्ष मार्गः अन्यत्—पृथगस्ति, प्रेय.—अतिशयेन प्रियः प्रेयः—प्रियास्पद भोगमार्ग. अन्यत् पृथगेव भवति, ते उभे—श्रेयप्रेयसी नानार्थे—परस्पर विलक्षण प्रयोजने सती पुरुष सिनीतः—वध्नीत.—पुरुष स्ववशतामापादयतः इत्यर्थः। द्वयो. तयोः—मध्य श्रेयः आददानस्य—मोक्ष प्रयतमानस्य साधु 'गति.' भवति यस्तु प्रेयो वृणीत—अभिलषति स अर्थात्—पुरुषार्थात् हीयत-भ्रष्टो-भवति निश्चयेन उ इति अवधारणे।

हि० श०—श्रेय. = कल्याण का मार्ग। अन्यत् = दूसरा। उत = और। एव=ही। प्रेय =प्रिय अर्थात् योग्य वस्तुओं। उभे=दोनो। ते=वे। नानार्थे= भिन्न-भिन्न परिणाम वाले। पुरुषम् - मनुष्य को। सिनीतः = बाँधते हैं। योः = उन दोनों में। आददानस्य = स्वीकार करने वाला। साधु=उत्तम। वृणीते=स्वीकार करता है। हीयते = भ्रष्ट होता है।

भावार्थ—अति प्रशस्त जो मोक्ष मार्ग है, वह पृथक् है तथा अति प्रिय लगने वाला भोग मार्ग पृथक् है। ये दोनो परस्पर भिन्न-भिन्न प्रयोजन वाले होकर पुरुष को अपनी-अपनी तरफ बाँधते है। इन दोनों के बीच जो धीर पुरुष श्रेय की प्राप्ति का यत्न करता है उसको उत्तम गति होती है तथा भोग की अभिलाषा करनेवाला यथार्थ पुरुषार्थ से भ्रष्ट हो जाता है।

विशेष—यद्यपि शास्त्र के लिये मनुष्य के प्राप्तव्य चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, तथापि परम प्राप्तव्य चतुर्थ मोक्ष ही है, उसके बिना अन्य की प्राप्ति से भी मनुष्य अधूरा ही रह कर जन्ममरण रूप संसार चक्र में भटकते-भटकते स्वर्ग नरकादि भोगते ८४ लक्ष योनि के चक्र से कभी छुटकारा नहीं पाता है।

Metaphysics (श्रेय) and Materialism (प्रेय) are two quite different things One is preferable, the other pleeasurable.

These two solve the different objects of men by binding them, Good befalls only on him who chooses the former (श्रेय) but the man who accepts the latter (प्रेय) falls from the real path of his life

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते ॥ २ ॥

पदच्छेद—श्रेयः, च, प्रेयः, च, मनुष्यम्, एतः, तौ, सम्परीत्य, विविनक्ति, धीरः, श्रेयः, हि, धीरः, अभि, प्रेयसः वृणीते, प्रेयः, मन्दः, योगक्षेमाद्, वृणीते ।

अन्वय —श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यम् एतः धीरः तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः प्रेयसः श्रेयः अभिवृणीते मन्दः योगक्षेमात् प्रेयः वृणीते ।

[शा०] यद्युभे अपि कर्तुं स्वायत्ते पुरुषेण किमर्थं प्रेय एवादत्ते बाहुल्येन लोक इत्युच्यते—सत्यं स्वायत्ते तथापि साधनतः फलतश्च मन्दबुद्धीनां दुर्विवेकरूपे सती व्यामिश्रीभूते इव मनुष्यमेतं पुरुषमा इतः प्राप्नुत श्रेयश्च प्रेयश्च । अतो हंस इवाम्भसः पयस्तौ श्रेयःप्रेयःपदार्थौ सम्परीत्य सम्यक् परिगम्य मनसालोच्य गुरुलाघवं विविनक्ति पृथक्करोति धीरो धीमान् । विविच्य च श्रेयो हि श्रेय एवाभिवृणीते प्रेयसोऽभ्यर्हितत्त्वात् । कोऽसौ ? धीरः ।

यस्तु मन्दोऽल्पबुद्धिः स विवेकासामर्थ्याद्योगक्षेमाद्योगक्षेमनिमित्तं शरीराद्युपचयरक्षणनिमित्तमित्येतत्प्रेयः पशुपुत्रादिलक्षणं वृणीते ।

संस्कृत व्याख्या—श्रेयः प्रेयश्च—मोक्षभोगौ द्वौ मनुष्यम् एतः—प्राप्नुतः, तौ-तौ श्रेयःप्रेयसौ सम्परीत्य—सम्यगालोच्य धीरः विविनक्ति—हंस इव क्षीरनीरे पृथक्करोति । तत्र धीरः विकारहेतौसत्यपि अविकारवान् स धीरः (विकारहेतौ सति न विक्रियन्ते चेतांसि येषां त एव धीराः इति व्याख्यानात्) श्रेयः हि निश्चयेन प्रेयसः—प्रेयोपेक्षय अभिवृणीते—अभ्यर्हितत्वात् अभिलषति मन्दः—मन्दमतिः योगक्षेमाद् हेतोः प्रेय एव वृणीते ।

कार्पण्यदोषत्वात् अलब्धलाभः योग' लब्धस्य परिरक्षणम् क्षेमः 'तयो' प्राप्तौ-यतते इतिभावः ।

हि०श०—मनुष्यम=मनुष्य को । एतः = प्राप्त होते हैं । धीरः = बुद्धिमान् मनुष्य । तौ=उन दोनों के विषय में । सम्परीत्य=भली भाँति विचार करके । विविनक्ति=पृथक-पृथक् रूप से जान लेता है । प्रेयसः = प्रेय अर्थात् योग की अपेक्षा । श्रेयः = कल्याण के मार्ग को ही । अभिवृणीते=स्वीकार करता है । मन्दः = मूर्ख । योगक्षेमात् = सांसारिक योग क्षेम की इच्छा से । प्रेयः = योग के मार्ग को ही । वृणीते=स्वीकार करता है ।

भावार्थ—श्रेय और प्रेय दोनों मनुष्य को जब प्राप्त होते हैं तो विवेकी मनुष्य दोनों को हंस की तरह दूध और पानी की तरह पृथक् कर लेता है। उस समय धीर पुरुष प्रेय की उपेक्षा करके श्रेय का ही वरण करता है और मन्द अर्थात् क्षीणबुद्धि योगक्षेम के लिए प्रेय की आकांक्षा कर लेता है ।

विशेष—यहाँ धीर शब्द की व्याख्या शास्त्रों के अनुसार की गयी है। विकार के साधन उपस्थित होने पर भी जिसका चित्त विकार को न प्राप्त हो वही धीर कहा जाता है । यहाँ प्रकृत में श्रेय प्रेय दोनों के प्राप्त होने पर धीर ही प्रेय की उपेक्षा कर सकता है, अज्ञानी कभी भी नहीं। योग क्षेम शब्द की व्याख्या इसके पहले भी की गयी है । अलब्ध की प्राप्ति को योग और लब्ध वस्तु की रक्षा होना क्षेम कहा गया है ।

इस प्रकार श्रेय की प्रशंसा करके यम श्रेय के अनन्य अधिकारी शिष्य प्रिय नचिकेता की प्रशंसा करते हुए आगे कहते हैं ।

These two paths (the preferable and the pleasure (श्रेय and प्रेय) lie before men The man of intelligence examines the both and separates these He chooses the path of the preferable (श्रेय) while the fool selects the path of the pleasure (प्रेय) for the development and protection of body.

नचिकेता की प्रशंसा

स त्वं प्रियान्प्रियरूपा्ँ श्च कामा-

नभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः

नैतां सृङ्का वित्तमयीमवाप्तो

यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ।। ३ ।।

पदच्छेद—स, त्वम्, प्रियान्, प्रियरूपान् च, कामान् अभिध्यायन् नचिकेत, अत्यस्राक्षीः, । न एताम् सृङ्काम्, वित्तमयीम्, अवाप्त यस्याम्, मज्जन्ति, बहव मनुष्याः ।

अन्वय—नचिकेत स त्वम् प्रियान् प्रियरूपान् च कामान् अभिध्यायन् अत्यस्राक्षी वित्तमयीम् एताम् सृङ्काम् न अवाप्त यस्याम बहव मनुष्याः मज्जन्ति ।

[शां०] त्वं पुनः पुनर्मया प्रलोभ्यमानोऽपि प्रियान् पुत्रादीन् प्रियरूपांश्चाप्सर प्रभृतिलक्षणान् कामानभिध्यायंश्चिन्तयंस्तेषाम् अनित्यत्वासारत्वादिदोषान् हे नचिकेतोऽत्यस्राक्षीरतिसृष्टवान् परित्यक्तवानस्यहो बुद्धिमत्ता तव । नैतामवाप्तवानसि सृङ्का सृतिं कुत्सिता मूढजनप्रवृत्ता वित्तमयी धनप्रायाम् । यस्या सृतौ मज्जन्ति सीदन्ति बहवोऽनेके मूढा मनुष्या ।

संस्कृत व्याख्या—हे नचिकेतः, स त्वम्, प्रियान् – प्रियवस्तूनि स्वतः, प्रियरूपान् स्वरूपश्च प्रियसुन्दरताम्-आदीनि, कामान्-मनोरथान् अभिध्यायन्—दुःखोदर्कत्वदुःखमिश्रितत्वादि-दोषयुक्ततयानिरूपयन् सर्वथाअत्यस्राक्षीः—त्यक्तवान् असि । वित्तमयी—धनप्रायाम् सृङ्काम्—शृंखलाम् मूढजनसेवितान् एवाम् न अवाप्तः—न प्राप्तवानसि यस्याम् बहवो मनुष्या मज्जन्ति अवगाहन्ते ।

हि० श०—त्वम्=तुमने । प्रियात्=प्रिय लगने योग्य । प्रिय रूपात् = अत्यन्त प्रिय लगने वाले अप्सरादि । कामान्=भोगों को । अभिध्यायन् = विचार करते हुए । अत्यस्राक्षीः=त्याग दिया । एताम्=इस । वित्तमयीम् = सम्पत्तिरूपी । सृङ्काम् = माला । अवाप्तः = प्राप्त किया यस्याम् = जिसमे । बहवः = बहुत से । मज्जन्ति = डूब जाते हैं ।

भावार्थ—हे नचिकेत ! तुमने तो स्वयमेव स्वाभाविक रूप मे प्रिय कामनाओं, स्वर्ग तक के अप्सरादि भोगों को, दुःख रूप और दुःख

मिश्रित उनका विचार कर ही (दोष युक्त देखते हुए) सर्वथा त्याग कर दिया है जिसमें सभी मनुष्य गोता खाते रहते हैं।

Nachiketa, you, such as you are, have kicked out all the desirable objects having fully considered and knowing them futile as they are themselves delightful or the generator of delight You have not selected this path of wealth wherein many of the people sink and come to griel

दूरमेते विपरीते विषूची
अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये
न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥ ४ ॥

पदच्छेद—दूरम्, एते, विपराते, विषूची, अविद्या या च विद्या इति ज्ञाता। विद्या, अभीप्सिनम्, नचिकेतसम्, मन्ये, न त्वा, कामा, बहवः, अलोलुपन्ता।

अन्वय—या अविद्या या च विद्या इति एते दूरम् विपरीते विषूची च इति-ज्ञाता नचिकेतस त्वा विद्याभीप्सिन मन्ये बहवः कामा. (त्वाम्) न अलोलुपन्त।

[शा०]तयो.श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीत इत्युक्त तत्कस्माद्यत—दूर दूरेण महतान्तरेणैते विपरीते अन्योन्य-व्यावृत्तरूपे विवेकाविवेकात्मकत्वात्तम प्रकाशाविव। विषूची विषूच्यौ नानागती भिन्नफले संसारमोक्षहेतुत्वेनेत्येतत्।

के ते इत्युच्यते या चाविद्या प्रेयोविषया विद्येति च श्रेयोविषया ज्ञाता निर्ज्ञातावगता पण्डितै। त ः विद्याभीप्सिन विद्यार्थिनं नचिकेतसं त्वामहं मन्ये। कस्माद्यस्मादविद्वद्बुद्धिप्रलोभिन कामा अप्सर प्रभृतयो बहवोऽपि त्वा त्वा नालोलुपन्त न विच्छेदं कृतवन्त श्रेयोमार्गादात्मोप-भोगाभिवाञ्छासंपादनेन। अतो विद्यार्थिनं श्रेयोभाजनं मन्य इत्यभिप्रायः।

संस्कृत व्याख्या—या अविद्या इति ज्ञाना—कामकर्मात्मकारूपा, या च-विद्या—इति ज्ञाता-वैराग्यतत्वरूपाज्ञानमयी, एते-द्वे दूरम-अत्यन्तम् विषूची-

विषूच्यौ-(पूर्वसवर्णदीर्घः छान्दसः) भिन्नगती, विपरीते-परस्परविरुद्धे च तत्र नचिकेतसम् त्वाम् विद्या अभीप्सिनम्-विद्याभिलाषम् मन्ये अहम् रतिशेष, बहवोऽपि कामा प्रेयासः न त्वाम् अलोलुपन्तः श्रेयमार्गात् त्वाम् न दूर कृतवन्तः ।

हि० श०—एते=ये दोनों अर्थात् प्रेय और श्रेय के मार्ग। दूरम्= बहुत विपरीते=परस्पर विरुद्ध । विषूची=भिन्न-भिन्न फल देनेवाले हैं। अविद्या=प्रिय अर्थात् सासारिक लोग की इच्छा वाली । विद्या=श्रेय की इच्छा वाली। ज्ञाता=जानी गयी। विद्याभाप्सनम्=यथार्थ ज्ञान को चाहने वाला ही। मन्ये=मन्ये=समझता हूँ। त्वा=तुमको अलोलुपन्त= लुभा सके।

भावार्थ—काम कर्मात्मरूप जो यह अविद्या और वैराग्यतत्वरूपा ज्ञानात्मरूपा जो यह विद्या ये दोनों अन्तत. भिन्न गति वाली और परस्पर विरुद्ध हैं, उसम तुमको हम विद्याभिलाषी मानते हैं क्योंकि बहुत से प्रेयाभिलाष पदार्थ भी तुम्हे पथ भ्रष्ट नहीं कर सके ।

विशेष—'अनित्या शुचिदुःखात्मसु नित्यशुचि सुखात्मख्याति 'इति वा' यह अविद्या पदार्थ का लक्षण योग सूत्र २।५ में है, उससे भिन्न विद्या है, अर्थात्-ऐहिलौकिक भोगसाधन जो अनित्य अपवित्र दुःखात्मक और आत्मा से भिन्न शरीरादि मे नित्य पवित्र सुखात्मक और आत्म बुद्धि है यही अविद्या पदार्थ है, इनमें तादृश यथार्थ ज्ञान ही विद्या है ।

इस लोक में अविद्या में निमग्न बडे-बडे पण्डित मानी लोग अविद्या को ही विद्या मानकर उपदेश देते हुए देखे जाते हैं, जैसे अन्धों का नायक अन्धों को।

Knowledge (विद्या) and ignorance (अविद्या अथवा श्रेय और प्रेय) are quite mutual ly inconsisent and they produce different fruits I think all the enjoyable things can not tempt or attract you, O Nachiketa, who desires knowledge (श्रेय) only

अविद्या-ग्रस्तो की दुर्दशा

अविद्यायामन्तरे वर्तमाना:
स्वयं धीरा. पण्डितंमन्यमानाः ।

दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ५ ॥

पदच्छेद—अविद्यायाम्, अन्तरे, वर्तमानाः स्वयम्, धीराः पण्डितम्, मन्यमानाः दन्द्रम्यमाणाः, परियन्ति, मूढाः, अन्धेन एव, नीयमानाः, यथा, अन्धाः।

अन्वय–अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमानाः धीराः पण्डित मन्यमानाः द्रन्द्रम्यमाणाः मूढाः अन्धेन एव नीयमानाः यथा अन्धाः (तथा) परियन्ति।

[शा०] ये तु संसारभाजना—अविद्यायामन्तरे मध्ये घनीभूत इव तमसि वर्तमाना वेष्ट्यमाना पुत्रपश्वादितृष्णापाशशतैः। स्वयं वय धीराः प्रज्ञावन्त पण्डिता. शास्त्रकुशलाश्चेति मन्यमानास्ते दन्द्रम्यमाणा अत्यर्थ कुटिलामनेकरूपा गतिम् इच्छन्तो जरामरणरोगादिदुःखौ परियन्ति परिगच्छन्ति मूढा अविवेकिनोऽन्धेनैव दृष्टिविहीनेनैव नीयमाना विषमे पथि यथा बह्वोऽन्धा महान्तमनर्थमृच्छति तद्वत्!

संस्कृत व्याख्या—अविद्यायाम्-काम्यकर्मादि लक्षणा अविद्या अन्धकार रूपा तस्याम् अन्तरे-मध्ये वर्तमानाः-निमग्नाः स्वय च स्वकीयम् धीराः—विद्वासः पण्डितम् मन्यमानाः—पण्डित मानिनः—पण्डितम् आत्मान मन्यन्ते, वस्तुतो अपण्डितो एवेति तत्वम्, तादृशाः मूढाः मूर्खाः दन्द्रम्यमाणा —जरारोगादि दुःखपीडिताः परियन्ति-परिभ्रमन्ति यथा अन्धेन नीयमाना अन्धेन एव तथा इति दृष्टान्तः।

हि० श०—अविद्यायाम् अन्तरे = अविद्या के बीच म। वर्त्तमानाः = रहते हुए, फसे हुए। स्वय = अपन आपको। धीराः = विद्वान्। पण्डितम् मन्यमाना = पण्डित मानने वाले। दन्द्रम्यमाणाः = जन्ममरण आदि का दुःख भोगते हुए। परियन्ति = ठोकर खाते हैं, भटकते हैं। अन्धेन = अन्धे व्यक्ति द्वारा। नीयमानाः = ले जाये जाने वाले। अन्धा = अन्धे व्यक्ति।

भावार्थ—काम्यकर्म तत् फलादि रूप अविद्या के चक्कर म फसा हुआ और अपने को धीर और शास्त्रकुशल पण्डित मानने वाले बहुत से अविवेकी जन्म जरारोगादि दुःख भार से पीड़ित होते हुए इस ससार के चक्र म घूमते हैं, वे अपने को भ्रष्ट करते हुए दूसरे को भी भ्रष्ट करते देखे जाते हैं यह वैसे

ही है जैसे एक अन्धा दूसरे अन्धे को ले चलता है और अपने साथ दूसरे को भी कूप मे गिराता है।

इस ससार की अविद्या की निन्दा करते हुए आगे और यमराज कहते हैं।

The people who live in the midst of ignorance thinking themselves intelligent and learned, astray alround just like the blind led by the blind

न साम्परायः प्रतिभाति बालं
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ ६ ॥

पदच्छेद—न, साम्परायः, प्रतिभाति, बालम्, अयम, लोकः, अस्ति, पर, इति, मानी, पुनः, पुन, वशम्, आपद्यते, मे, प्रमाद्यन्तम्, वित्तमोहेन, मूढम् ।

अन्वय—साम्पराय. प्रमाद्यन्तम् वित्तमोहेन मूढम् बाल प्रति न प्रतिभाति अयम् लोक (अस्ति) नास्ति पर इति मानी पुन पुनः मे वश आपद्यते ।

[शा०] अत एव मूढत्वात्—न साम्पराय. प्रतिभाति सम्पर ईयत इति सम्पराय परलोकस्तत्प्राप्तिप्रयोजन साधन साधनविशेष शास्त्रीयः साम्पराय । स च बालमविवेकिनं प्रति न प्रतिभाति न प्रकाशते नोपतिष्ठत इत्येतत् ।

प्रमाद्यन्त प्रमाद कुर्वन्त पुत्रपश्वादिप्रयोजनेष्वासक्तमनस तथा वित्तमोहेन वित्तनिमित्तेनाविवेकेन मूढं तमसाच्छन्न सन्तम् । अयमेव लोको योऽयं दृश्यमान स्त्र्यन्नपानादिविशिष्टो नास्ति परोऽदृष्टो लोक इत्येवं मननशीलो मानी पुन पुनर्जनित्वा वश मदधीनतामापद्यते मे मृत्योर्मम । जननमरणादिलक्षणदुःखप्रबन्धारूढ एव भवतीत्यर्थः प्रायेण ह्येवंविध एव लोक ।

संस्कृत व्याख्या—वित्तमोहेन—धनमदेन प्रमाद्यन्तम्—भ्रान्तप्रज्ञम्—मूढम्—विवेकशून्यम् बालम्—विषयासक्तम्, साम्परायः—परलोकः न प्रति-

भाति—न प्रकाशते। अतः अयमेवलोकः दृश्यमान एवास्ति पर-परलोकः नैव अस्ति कश्चित् इति मानी-मन्तारः पुनः पुनः बारम्बारम् मे-मम-वशम् आपद्यते-प्रपद्यते-यमयातनासु पतति इति तात्पर्यम्।

हि० श०—वित्तमोहेन = धन के मोह से। मूढम् = मुग्ध। प्रमाद्यन्तम्= प्रमाद करने वाले के अन्दर। साम्पराय = परलोक का विचार। न प्रतिभाति = प्रगट नहीं होता। अयम् = यह (भौतिक) लोक = ससार (ही सब कुछ है)। परः = दूसरा। मानी = अभिमानी, मानने वाला। पुन पुनः = बार-बार। मे = मेरे। आपद्यते = आ पड़ता है।

भावार्थ—धन के मद से भ्रान्त बुद्धि वाले विवेकशून्य, विषय में आसक्त जीव को परलोक नहीं दिखाई पड़ता है। यही संसार ही है, इससे परे परलोक (कोई) नहीं है ऐसा मानने वाले प्राणी हमारे ही वश मे बारम्बार पड़ते हैं और यम यातना का फल भोगते हैं।

अब यमराज प्रिय शिष्य नचिकेता को आत्मतत्व न जान सकने का कारण बतलाते हुए आगे कहते हैं।

The man involved in the worldly pleasures thinks never of the world beyond this life In his eyes this is only the world and nothing else In this way he suffers the pain of birth and death again and again

आत्मज्ञान की दुर्लभता

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-
श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्ट ॥ ७ ॥

पदच्छेद–श्रवणाय, अपि, बहुभिः, यः, न लभ्यः, शृण्वन्तः, अपि, बहवः, यम्, न, विद्युः। आश्चर्यः, वक्ता, कुशलः, अस्य, लब्धा, आश्चर्य, ज्ञाता, कुशलानुशिष्टः।

अन्वय—यः बहुभिः श्रवणाय अपि न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवः यं न

विद्युः (तस्य) अस्य वक्ता आश्चर्यः, लब्धा आश्चर्यः कुशलानुशिष्टः ज्ञाता च आश्चर्यः ।

[शा०] यस्तु श्रेयोऽर्थी सहस्रेषु कश्चिदेवात्मविद्भवति त्वद्विधो यस्मात्—श्रवणायापि श्रवणार्थं श्रोतुम् अपि यो न लभ्य आत्मा बहुभिरनेकै श्रृण्वन्तोऽपि बहवोऽनेकेऽन्ये यमात्मानं न विद्युर्न विदन्त्यभागिनोऽसंस्कृतात्मानो न विजानीयु.। किं चास्य वक्तापि आश्चर्योऽद्भुतवदेवानेकेषु कश्चिद् एव भवति। तथा श्रुत्वाप्यस्य आत्मनः कुशलो निपुण एवानेकेषु लब्धा कश्चिदेव भवति। यस्माद् आश्चर्यो ज्ञाता कश्चिदेव कुशलानुशिष्ट. कुशलेन निपुणेन आचार्येणानुशिष्ट. सन्।

संस्कृत व्याख्या—यः = आत्मतत्वम् बहुभि.—नरै. श्रवणाय-श्रवणलाभाय अपि न लभ्यः प्राप्यः, य च बहवः श्रृण्वन्तो अपि न विद्यु. न जानीयुः, । अस्य-आत्मतत्वस्य कुशलः वक्ता—चतुरो वक्ता, कुशलः लब्धा-प्राप्ता च आश्चर्यः—दुर्लभः, कुशलानुशिष्ट ज्ञाता—कुशलेनाऽऽचार्येण शिक्षितः ज्ञाताऽपि आश्चर्यः—दुर्लभः इति।

हि० श०—य. = जो । बहुभि. बहुतों को । श्रवणाय = सुनने के लिए । अपि - भी । लभ्यः = प्राप्त होता । यम् = जिसको । बहवः = बहुत से लोग । श्रृण्वन्तः = सुनते हुए । न विद्यु. = नहीं समझ पाते । अस्य = उस आत्मतत्त्व का । वक्ता = समझाने वाला । आश्चर्य. = आश्चर्यमय अर्थात् दुर्लभ है । लब्धा = प्राप्त करने वाला । कुशलः = योग्य व्यक्ति कुशलानुशिष्टः = कुशल आचार्य से उपदेश प्राप्त करने वाला ।

भावार्थ—यह आत्मतत्व बहुतों को तो सुनने को ही नहीं मिलता, बहुत से सुनकर भी नहीं समझ पाते हैं । इस वस्तु का वक्ता और प्राप्त करने वाला अति दुर्लभ है तथा कुशल आचार्य से उपदेश प्राप्त कर जानने वाला भी दुर्लभ है ।

विशेष—गीता मे भगवान श्रीकृष्ण स्वयम् कहते हैं—

'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् भवति सिद्धये,यततामपि सिद्धाना कश्चिन्मावेति तत्वतः ।'

To many it is not available to hear of Self and to many it is not available to understand even after hearing The

teacher and the pupil both are equally wonderful, and more wonderful is he who learns This (Atman) being taught by a teacher full of skill.

न नरेणावरेण प्रोक्त एष
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति
अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥ ८ ॥

पद० —न, नरेण, अवरेण, प्रोक्तः, एषः, सुविज्ञेयः, बहुधा, चिन्त्यमानः, अनन्यप्रोक्ते, गतिः, अत्र, न, अस्ति, अणीयान्, हि, अप्रतर्क्यम्, अणुप्रमाणात् ।

अन्वय—एष अवरेण नरेण प्रोक्तः न सुविज्ञेयः (यस्मात् एष अनेकैः) बहुधा चिन्त्यमानः (भवति) अनन्यप्रोक्ते अत्र गतिः न अस्ति हि (एष) अणुप्रमाणात् अणीयान् (अपि च) अतर्क्यम् ।

[शा०] कस्मात् न हि नरेण मनुष्येणावरेण प्रोक्तोऽवरेण हीनेन प्राकृतबुद्धिना इत्येतदुक्त एष आत्मा यं त्वं मा पृच्छसि । न हि सुष्ठु सम्यग्विज्ञेयो विज्ञातुं शक्यो यस्माद् बहुधास्ति नास्ति कर्ताकर्ता शुद्धोऽशुद्ध इत्याद्यनेकधा चिन्त्यमानो वादिभिः ।

कथं पुनः सुविज्ञेय इत्युच्यते अनन्यप्रोक्तेऽनन्येन अपृथग्दर्शिना आचार्येण प्रतिपाद्यब्रह्मात्मभूतेन प्रोक्त उक्त आत्मनि गतिरनेकधास्ति नास्तीत्यादिलक्षणा चिन्ता गतिरत्रास्मिन् आत्मनि नास्ति न विद्यते सर्वविकल्पगतिप्रत्यस्तमितत्वादात्मनः ।

अथवा स्वात्मभूतेऽनन्यस्मिन् आत्मनि प्रोक्तेऽनन्यप्रोक्ते गतिः अत्रान्यावगतिर्नास्ति ज्ञेयस्यान्यस्य अभावात् । ज्ञानस्य ह्येषा परा निष्ठा यदात्मैकत्वविज्ञानम् । अतोऽवगन्तव्याभावान्न गतिः अत्रावशिष्यते । संसारगतिर्वात्र नास्त्यनन्य आत्मनि प्रोक्ते नान्तरीयकत्वात्तद्विज्ञानफलस्य मोक्षस्य ।

अथवा प्रोच्यमानब्रह्मात्मभूतेनाचार्येण प्रोक्त आत्मनि अगतिरनव-

बोधोऽपरिज्ञानम् अत्र नास्ति। भवत्येवावगतिस्तद्विषया श्रोतुस्तदस्म्यहमित्याचार्यस्येवेत्यर्थ।

एव सुविज्ञेय आत्मा आगमवता आचार्येणानन्यतया प्रोक्तः। इतरथा ह्यणीयानणुप्रमाणादपि सम्पद्यत आत्मा। अतर्क्यमतर्क्यं स्वबुद्ध्याभ्यूहेन केवलेन तर्केण तर्क्यमाणेऽणुपरिमाणे केनचित् स्थापित आत्मनि ततो ह्यणुतरम् अन्योऽभ्यूहति ततोऽप्यन्योऽणुतममिति न हि कुतर्कस्या निष्ठा क्वचिद्विद्यते।

संस्कृत व्याख्या—अवरेण—प्राकृतबुद्धिना (देहात्मध्यासिना) नरेण-पुरुषेण प्रोक्त—उपदिष्टः, एष.—आत्मा सुविज्ञेयः सम्यक् रूपेण ज्ञान विषयः न भवति इत्यर्थः। यतोहि बहुधाचिन्त्यमान - वादिभिः विविध-प्रकारेण विवदमान एव भवति न तु तत्वज्ञान जायते इत्यर्थ.। अनन्यप्रोक्ते—न अन्येन—स्वत एव उपदिष्टे आत्मविषये गतिः—अवगतिः ज्ञान नास्ति नैव प्राप्नोति—यतोहि सम्यक् गुरूपदिष्टः सन्नेव आत्म परिचयो जायते ननु स्वत एव कुत इति चेत्—आत्मा खलु अणु प्रमाणादपि अणीयान् अस्ति, अप्रतर्क्यम्—तर्कागोचरम्—तर्केण न स. ज्ञाप्यमानम् जानीहि इतिः शेषः।

हि० श०—अवरेण = साधारण। नरेण = पुरुष द्वारा। प्रोक्तः = कहा गया। चिन्त्यमानः = नाना प्रकार से विचार किये जाने पर भी एष = यह आत्मतत्त्व। सुविज्ञेयः न = सरलता पूर्वक समझने योग्य नहीं है। अनन्यप्रोक्त = किसी अन्य ज्ञानी पुरुष द्वारा उपदेश न प्राप्त किये जाने पर। अत्र = इस आत्म तत्त्व के विषय अणुप्रमाणात् = अत्यन्तसूक्ष्म अणु से भी। अणीयान् = अति सूक्ष्म है। अतर्क्यम् = यह तर्क का विषय नहीं है।

भावार्थ—प्राकृत बुद्धि वाले जो देहात्मवादी जन हैं उनसे उपदेश प्राप्त कर आत्मज्ञान नहीं होता—क्योंकि प्राकृत बुद्धि वाले पण्डितमानी तो ब्रह्म विषय मे भी विवाद ही करते हैं और वह विवाद से निश्चय नहीं कर सकते और सद्गुरु के उपदेश के बिना स्वय शास्त्र को आधार लेकर कथन करने से भी आत्म ज्ञान नहीं होता क्योंकि वह आत्मा तो 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' है, इसलिए स्वतः ज्ञान कैसे वहाँ तक जा सकता है।

यम अनित्य लौकिक साधनों से नित्य ब्रह्मतत्व कैसे जाना जा सकता है, इसके बारे में कहते हैं—

The Soul, thought of variously, can never be understood perfectly when it is taught by an inferior or incompetent teacher, but when it is taught by a competent one who has full knowledge and well experience of Self, no doubt will be left at all For it can not be argued as it is the smallest particle even smaller than the atomic

नैषा तर्केण मतिरापनेया
प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि
त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥

पद०—न, एषा, तर्केण, मतिः, आपनेया, प्रोक्ता, अन्येन, एव, सुज्ञानाय, प्रेष्ठ ? याम्, आपः, सत्यधृतिः, बत, असि, त्वादृक् न भूयात् नचिकेतः :ष्टा ।

अन्वय—(हे) प्रेष्ठ त्वम् याम् आप. एषा मतिः तर्केण न आपनेया (भवति) अन्येन प्रोक्ता सुज्ञानाय एव (भवति) हे नचिकेत. सत्यधृतिः असि बत न त्वादृक् प्रष्टा भूयात् ।

[शा०] अतोऽनन्यप्रोक्त आत्मनि उत्पन्ना येयमागमप्रतिपाद्यात्ममतिर्नैषा तर्केण स्वबुद्धयभ्यूहमात्रेणापनेया न प्रापणीयेत्यर्थ । नापनेतव्या वा न हातव्या तार्किको ह्यनागमज्ञः स्वबुद्धिपरिकल्पितं यत्किञ्चिदेव कथयति । अत एव च येयमागमप्रभूता मतिरन्येनैवागमाभिज्ञेन आचार्येणैव तार्किकात्प्रोक्ता सती सुज्ञानाय भवति हे प्रेष्ठ प्रियतम ।

का पुन सा तर्कागम्या मतिरित्युच्यते --

या त्वं मति मद्वरप्रदानेन आप प्राप्तवानसि । सत्या अवितथविषया धृतिर्यस्य तव स त्व सत्यधृतिर्बतासीत्यनुकम्पयन्नाह मृत्युर्नचिकेतसं वक्ष्यमाणविज्ञानस्तुतये । त्वादृक्त्वत्तुल्यो नः अस्मभ्य भूयाद्भवताद्भवत्वन्य. पुत्र. शिष्यो वा प्रष्टा. कीदृग्यादृक्त्वं हे नचिकेतः प्रष्टाः ।

संस्कृत व्याख्या—एषा-आत्मविषयिणी मति, तर्केण न आपनेया न प्राप्तव्या, तर्क निपुणाप्राप्या इत्यर्थ, अन्येनैव—सदाचार्येणैव उपदिष्टा मतिः मोक्षसाधनज्ञानाय भवति इति। हे प्रेष्ठ—नचिकेतः—हे प्रियतम शिष्य नचिकेतः! या मतिम्—यादृशीं बुद्धि त्वम् आप.-प्राप्तवानसि, अतः त्वम्, वत-निश्चयेन सत्यधृतिः—सत्या-अप्रकम्प्या धृतिः—धारणा यस्य तथा असि नः—अस्मान् त्वादृग् एव प्रष्टा जिज्ञासु भूयात् इति।

हि० श०—एषा = यह (आत्म तत्त्व सम्बन्धिनी बुद्धि। याम् = जिसे त्वम् = तुमने। आपः = प्राप्त किया है। मतिः = बुद्धि। तर्केण = तर्क के द्वारा। आपनेया = नहीं प्राप्त की जा सकती अन्येन = किसी आचार्य के द्वारा। प्रोक्ता एव = कही हुई ही। सुज्ञानाय = उत्तम आत्म ज्ञान के निमित्त। भवति = होती है। वत = सचमुच ही। सत्यधृति. = उत्तम धैर्य वाले। असि = हो। त्वादृक् = तुम्हारे जैसा ही। प्रष्टाः = पूछने वाला नः = हमे। भूयात् = प्राप्त हुआ करे।

भावार्थ—यह आत्म तत्त्व सम्बधिनी बुद्धि तर्क के द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकती है किन्तु सदाचार्य गुरु के उपदेश द्वारा कही गई ही अच्छी प्रकार जानी जा सकती है। उस प्रकार की बुद्धि तुमने प्राप्त की है इसलिए तुम हमको अत्यन्त प्रिय हो, हे नचिकेत, तुम्हारे ऐसे ही जिज्ञासु प्रश्नकर्ता हमको मिले हम यही चाहते हैं।

फिर प्रसन्न होकर यमराज कहते हैं।

O my dear ! the knowledge that you have is not possible to obtain through argumentation, but it is attained only when it is imparted by someone else O Nachiketa ! you are of true determination really Such questioner like you is welcomed always

कर्मफल की अनित्यता

जानाम्यहँ शेवधिरित्यनित्यं
न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।

ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्नि-
रनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥१०॥

पद०—जानामि, अहम्, शेवधिः, इति, अनित्यम, न हि अध्रुवैः, प्राप्यते, हि, ध्रुवम् तत्। ततः, मया, नाचिकेतः, चितः, अग्निः, अनित्यैः द्रव्यैः, प्राप्तवान्, अस्मि, नित्यम्।

अन्वयः—शेवधिः अनित्यमिति अहं जानामि ध्रुवं तत् अध्रुवैः हि न प्राप्यते ततः मया नाचिकेतः अग्निः चितः अनित्यैः द्रव्यैः नित्यं प्राप्तवानस्मि।

[शां०] पुनरपि तुष्ट आह—जानाम्यहं शेवधिर्निधिः कर्मफललक्षणो निधिरिव प्रार्थ्यत इति। असावनित्यमनित्य इति जानामि। न हि यस्मादनित्यैः अध्रुवैर्नित्यं ध्रुवं तत्प्राप्यते परमात्माख्यः शेवधिः। यस्त्व-नित्यसुखात्मकः शेवधिः स एवानित्यैर्द्रव्यैः प्राप्यते।

हि यतस्ततस्तस्मान्मया जानतापि नित्यमनित्यसाधनैर्न प्राप्यत इति नाचिकेतश्चितोऽग्निः। अनित्यैर्द्रव्यैः पश्वादिभिः स्वर्गसुखसाधन-भूतोऽग्निर्निर्वर्तित इत्यर्थः। तेनाहमधिकारापन्नो नित्यं याम्यं स्थानं स्वर्गाख्यं नित्यमापेक्षिकं प्राप्तवानस्मि।

संस्कृतव्याख्या—शेवधिः—निधिः (तुल्यजातीयत्वात् कुबेरादि—ऐश्वर्यमपि एतज्जातीयकम् तच्च कर्मफलजन्यमनित्यमेवाहम् जानामि, अतः अध्रुवैः अनित्यफलसाधनभूतैः अनित्यद्रव्यसाधनीयैः वा ध्रुवम्—नित्यम् तत्त्वम् न प्राप्यते न लभ्यते, अतो मया—ब्रह्मप्राप्तिसाधनज्ञानोद्देश्येन अनित्यैरिष्टकादिद्रव्यैः नाचिकेताग्निः चितः—कृतसंधानः। तस्माद् हेतोः नित्यफलसाधनज्ञानं प्राप्तवान् अस्मीति अर्थात्—ब्रह्मप्राप्तेर्ज्ञानैकसाध्यत्वम् अनुभवामि।

हि० श०—अहम्=मैं। जानामि=जानता हूँ। शेवधिः=कर्म फल जन्य निधि अनित्य है। अध्रुवैः=नश्वर साधनों से। ध्रुवम्=नित्य आत्मतत्त्व। नहि प्राप्यते=नहीं प्राप्त किया जा सकता। ततः=इसलिए। मया=मैंने नाचिकेतः=नाचिकेत नामक अग्नि का। चितः=चयन किया। अनित्यैः द्रव्यैः=अनित्य साधनों द्वारा। नित्य=आत्मतत्त्व को। प्राप्तवान् अस्मि=प्राप्त कर लिया है।

भावार्थ—यम ने कहा कि कर्म फल से उत्पन्न होने वाले लौकिक धन को कौन कहे कुबेरादिदेवों का भी ऐश्वर्य सब अनित्य और नश्वर है। इसलिए इस अनित्य वस्तु के द्वारा ध्रुव नित्य ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए हमने यह नाचिकेत नाम की अग्नि का चयन किया है अर्थात् यह नित्य फल साधन करने का ज्ञान स्वरूप है इसको प्राप्त किया है।

10 I know that this treasure is temporary The permanent existence can not be obtained through this temporary treasure Therefore I performed the Nachiketa-fire with these impermanent things and have attained this permanency of life

नचिकेता के त्याग की प्रशंसा

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां
क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा
धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥११॥

पद०—कामस्य, आप्तिम्, जगत, प्रतिष्ठाम्, क्रतोः, आनन्त्यम्, अभयस्य, पारम्, स्तोममहत्, उरगायम्, प्रतिष्ठाम्, दृष्ट्वा, धृत्या, धीर, नचिकेतः, अत्यस्राक्षीः।

अन्वयः—धृत्या धीरः (सन्) कामस्याप्तिं, जगतः प्रतिष्ठाम् क्रतोः आनन्त्यम् अभयस्य पारम् स्तोम महत् उरुगायम् प्रतिष्ठां दृष्ट्वा त्वम् (तत्) अत्यस्राक्षीः।

[शा०] त्वं तु कामस्याप्तिं समाप्तिम्, अत्रैवेहैव सर्वे कामाः परिसमाप्ता, जगतः साध्यात्माधिभूताधिदैवादेः प्रतिष्ठामाश्रयं सर्वात्मकत्वात्, क्रतोः फलं हैरण्यगर्भं पदमानन्त्यम्, अभयस्य च पारं परां निष्ठाम्, स्तोमं स्तुत्यं महदणिमाद्यैश्वर्याद्यनेकगुणसंहतं स्तोमं च तन्महच्च निरतिशयत्वात्स्तोममहत्, उरुगायं विस्तीर्णां गतिम्, प्रतिष्ठां स्थितिमात्मनोऽनुत्तमामपि दृष्ट्वा धृत्या धैर्येण धीरो धीमान्सन् नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः

परमेव आकाङ्क्षन्नतिसृष्टवानसि सर्वम् एतत् संसारभोगजातम्। अहो बतानुत्तमगुणोऽसि।

संस्कृतव्याख्या—क्रतोः—कर्मणः प्रतिष्ठाम्—फलभूताम् जगतः कामस्य—ब्रह्मलोक—पर्यन्तसर्वलोकसम्बन्धि, स्त्र्यादिविषयात्मककामस्य प्राप्तिम् दृष्ट्वा अनेक—आनन्त्यम्—अविनाशित्वम्—अभयम् स्तोममहत्—अपहतपाप्मत्व सत्यसकल्पत्वादिमहागुणगणाना स्तोमः समूहः तस्य महत्त्वम् उरुगायम्—बहुलकीर्तिन् प्रतिष्ठाम् च स्थैर्यम् मोक्षगतिम् च दृष्ट्वा धीरः—त्वम् धृत्या—धैर्येण हे नचिकेतः एहलौकिकान् कामान् अत्यस्राक्षी—त्यक्तवानसि।

हि० श०—कामस्य = इच्छित कर्मों की। आप्तिम् = प्राप्ति को। जगतः प्रतिष्ठाम् = ससार की प्रतिष्ठा को। क्रतोः = यज्ञ के। आनन्त्यम् = चिरस्थायी फल को। अभयस्य = निर्भयता की। पारम् = अवाधे से मुक्त। स्तोममहत् = स्तुति करने याग्य एव महत्त्वपूर्ण। उरुगायम् = महान् पुरुषों द्वारा स्तुति किये जाने याग्य। प्रतिष्ठाम् = प्रतिष्ठा से युक्त स्वर्ग को। दृष्ट्वा = देख कर। धृत्या = धैय के साथ। अत्यस्राक्षीः = त्याग कर दिया है। धीरः = धैर्यशाली। असि = हो।

भावार्थ—कर्म फलभूत जो कि ब्रह्मलोक पर्यन्त स्त्री आदि भोग हैं उनकी प्राप्ति को देखकर तथा अविनाशी और निर्भय तथा सत्य काम, सत्य सकल्प आदि गुणों के समूह से युक्त बहुल कार्ति रूप मोक्ष स्वरूप का देख कर हे नचिकेत तुमने लौकिक कामनाओं को त्याग दिया—यह तुम्हारी बड़ी धीरता और प्रज्ञाशालिता है।

11 All the enjoyable things as the accomplishment of desire, the support of the world, the fruits of meditation, the shore without fear the greatness of reputation and statelike vast land scuttered before You have given up them all patiently O Nachiketa !

आत्मज्ञान का फल

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥१२॥

पद०—तम्, दुर्दर्शम्, गूढम. अनुप्रविष्टम्, गुहाहितम्, गह्वरेष्ठम्, पुराणम्, अध्यात्मयोगाधिगमेन, देवम्, मत्वा, धीर, हर्षशौकौ, जहाति ।

अन्वय—त दुर्दर्शम गूढम् अनुप्रविष्टम् गुहाहितं गह्वरेष्ठ पुराणम् देवम् अध्यात्मयोगाधिगमेन मत्वा धीरः हर्षशोकौ जहाति ।

[शा०] यं त्वं ज्ञातुमिच्छस्यात्मानम् तं दुर्दर्शं दुःखेन दर्शनम् अस्येति दुर्दर्शोऽतिसूक्ष्मत्वात् गूढं गहनमनुप्रविष्टं प्राकृतविषयविकारविज्ञानैः प्रच्छन्नमित्येतत्, गुहाहितं गुहाया बुद्धौ स्थितं तत्रोपलभ्यमानत्वात् गह्वरेष्ठं गह्वरे विषमेऽनेकानर्थसंकटे तिष्ठतीति गह्वरेष्ठम्। यत एव गूढमनुप्रविष्टो गुहाहितश्चातो गह्वरेष्ठ, अतो दुर्दर्शः ।

तं पुराणं पुरातनमध्यात्मयोगाधिगमेन विषयेभ्यः प्रतिसंहृत्य चेतस आत्मनि समाधानम् अध्यात्मयोगस्तस्याधिगमस्तेन मत्वा देवमात्मानं धीरो हर्षशोकावात्मन उत्कर्षापकर्षयोः अभावाज्जहाति ।

संस्कृतव्याख्या—तम्-आत्मानम दुर्दर्शम् द्रष्टुमशक्यम् गूढम्-कर्मरूपाविद्यातिरोहितम्, अनुप्रविष्टम् सर्वभूताधिवासम्, गुहाहितम्-हृदयगुहायाम् वर्तमानम, गह्वरेष्ठम-अन्तर्यामिणम पुराणम्, अनादिम, अध्यात्मयोगाधिगमेन-अध्यात्मयोगेन ("यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह" इति वक्ष्यमाणप्रकारेण योगेन, देवं परमात्मान मत्वा ज्ञात्वा, धीरः तितिक्षुः, हर्षशोकौ—ऐहिकविषयलाभालाभेन जायमानौ हर्षशोकौ जहाति, त्यजति इत्यर्थः ।

हि० श०—तम् = उस । दुर्दर्शम्=अति कष्ट से साथ देखे जाने योग्य । गूढम्=रहस्यपूर्ण । अनुप्रविष्टम्=सर्वत्र व्याप्त, गुहाहितम्=बुद्धिरूपी गुहा में स्थित । गह्वरेष्ठम्=विषम सकट मे स्थित, पुराणम्=प्राचीन । देवम= दिव्य गुणों सेयुक्त । मत्वा=मानकर । धीर =धैर्यशाली जहाति=त्याग देता है।

भावार्थ—कठिनाई से दीख पड़ने वाले, गुप्त स्थान में प्रविष्ट हुए, बुद्धि रूप गुहा में स्थित, गहन स्थान मे रहनेवाले, उस पुरातन देव को अध्यात्मयोग की प्राप्ति से जानकर बुद्धिमान् पुरुष हर्ष और शोक को छोड़ देता है ।

12 The learned can only be free from all the joy and sorrow if he concentrates his mind and meditates on Self which is hard to be visible and explained, settled inccessibly found in intellect

एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः
प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा
विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥१३॥

पद०—एतत्, श्रुत्वा, सम्परिगृह्य, मर्त्य, प्रवृह्य, धर्म्यम्, अणुम्, एतम्, आप्य, सः, मोदते, मोदनीयम्, हि, लब्ध्वा, विवृतम्, सद्म, नचिकेतसम्, मन्ये ।

अन्वय.—मर्त्य एतत् श्रुत्वा अणुम् धर्म्यम् प्रवृह्य सम्परिगृह्य सः एतम् आप्य मोदनीय लब्ध्वा मोदते हि नचिकेतसम् (प्रति) सद्म विवृत मन्ये ।

[शां० किं च—एतदात्मतत्त्व यदहं वक्ष्यामि तच्छ्रुत्वाचार्यप्रसादात्सम्यगात्मभावेन परिगृह्योपादाय मर्त्यो मरणधर्मा धर्मादनपेतं धर्म्य प्रवृह्योद्यम्य पृथक्कृत्य शरीरादेः अणु सूक्ष्ममेतमात्मानम् आप्य प्राप्य स मर्त्यो विद्वान्मोदते मोदनीयं हर्षणीयमात्मानं लब्ध्वा । तदेतदेवंविधं ब्रह्मसद्म भवनं नचिकेतस त्वा प्रत्यपावृतद्वारं विवृतमभिमुखीभूतं मन्ये मोक्षार्हं त्वा मन्य इत्यभिप्राय. ।

संस्कृतव्याख्या—मर्त्य -मरणधर्मा मनुष्यः एतदात्मस्वरूपतत्व श्रुत्वा सपरिगृह्य-सम्यङ् मननादि कृत्वा, धर्म्यम्-कर्मसाध्यम् शरीरादि परित्यज्य एतमणुम् एव स्वात्मभूतम् सूक्ष्मतया चक्षुराद्यविषयम् परमात्मानम्-आप्य-प्राप्य स-विद्वान् मोदनीयम् अपहतपाप्मादिगुणाष्टकविशिष्ट लब्ध्वा स्व-स्वरूप प्राप्य मोदते-आनन्दी भवति । अत. पर मोक्षाधिकारिणम् नचिकेतसम् प्रशसति-नचिकेतसम्-विवृत सद्म ब्रह्मस्वरूप धाम विवृतद्वारम् प्रवेशार्हम् मन्ये-जानामि इत्यर्थः ।

हि० श०—मर्त्य=मनुष्य। एतत्=इस। धर्म्य=धारण करने योग्य उपदेश को। सम्परिगृह्य=अच्छी तरह ग्रहण कर, प्रवृह्य=विचार कर। अणु=सूक्ष्म आत्मतत्त्व को। आप्य=प्राप्त कर। मोदनीय=आनन्द स्वरूप परमात्मा को, मोदते=भगवान् के चिरन्तन आनन्द मे मग्न होता है। विवृतं सद्म=परमात्मा का खुला हुआ द्वारा। मन्ये=मानता हूँ।

भावार्थ—मरणधर्मा मनुष्य इस आत्मस्वरूप को श्रवण कर, अच्छी तरह मनन करके और कर्म फल से होने वाले शरीरादि से आत्मा को पृथक् समझ कर अणुस्वरूप आत्मा को (अपहत पाप्मादि अष्ट गुण युक्त परमात्मा को) प्राप्त करके आनन्द का अनुभव करता है। इस प्रकार तृतोय पश्न का उत्तर देते हुए यम मोक्षाधिकारी नचिकेता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि नचिकेता के लिए उस ब्रह्मरूप धाम का द्वार खुला हुआ है ऐसा हम समझते हैं।

अब नचिकेता "मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति" इत्यादि श्रवण से कृत-कृत्य होकर प्राप्तव्य आत्मा का स्वरूप प्रकृति से परे कैसे है। ऐसा शोध करने के लिए परम गुरु यमराज से पूछते हुए आगे बोला।

13. After hearing this, understanding it perfectly, recognising it supreme and obtaining it subtle, the man feels a great joy because he achieved that which is the source of delight I think that the residence of Brahman is open to Nachiketa

नचिकेता का प्रश्न

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मा-
दन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च
यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥१४॥

पद०—अन्यत्र, धर्मात्, अन्यत्र, अधर्मात्, अन्यत्र, अस्मात्, कृता-कृतात्। अन्यत्र, भूतात्, च, भव्यात्, च, यत्, तत्, पश्यति, तत्, वद।

अन्वय—यत् धर्मात् अधर्मात् अन्यत्र अस्मात् कृताकृतात् अन्यत्र, भूतात् भव्यात् च (अन्यत्) यत् तत् पश्यसि तत् वद।

हि॰श॰—सर्वे वेदाः=सम्पूर्ण अर्थात् चारों वेद। यत् =जिस। पदम्=पद अर्थात् परमात्मा का। आमनन्ति=प्रतिपादन करते हैं। सर्वाणि तपांसि=सम्पूर्ण तप। वदन्ति=कथन करते हैं। यत् इच्छन्तः=जिस (पद) को इच्छा रखने वाले। चरन्ति=आचरण करते हैं। तत्=उस (पद) का। =तेरे लिए। संग्रहेण=सक्षेप मे। ब्रवीमि=वर्णन करता हूँ। एतत्=यह। ओम् इति="ओऽम्" (पद) ही है।

भावार्थ—जिस प्राप्यभूत वस्तु को समस्त वेद साक्षात् या परम्परा रूप से प्रतिपादन करते हैं और सकल वेदान्त भाग जिसका एक मत से प्रतिपादन करता है तथा जिस पद की प्राप्ति के लिए लोग सब विषय परित्यागपूर्वक गुरुकुल मे वास करके क्लेशादि सहन करते हैं उस पद को तुमसे सक्षेप मे कहता हूँ। वह प्रणववाच्य परमात्मा है, यद्यपि उसमे अकार, उकार और मकार की वाच्यता भिन्न हैं तथापि अन्त में एकार्थ का प्रतिपादन होता है।

15 Teaching of Yama–In short I tell you of that attainable goal which all the Vedas describe, which is attained only by the act of selfmortification, and desiring for which people observe Brahmacharva it is Om.

ॐ कार की प्रशंसा

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥१६॥

पद०—एतद्, हि, एव, अक्षरम्, ब्रह्म, एतद्, हि, एव, अक्षरम्, परम्, एतद्, हि, एव, अक्षरम्, ज्ञात्वा, यः, यद्, इच्छति, तस्य, तत्।

अन्वयः—हि एतत् एव अक्षर ब्रह्म, एतत् एव हि अक्षरम् परम्, एतत् हि अक्षरम् ज्ञात्वा यः यत इच्छति तस्य तत् (सिध्यति)।

[शां॰ भ॰—एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्मापरमेतद्ध्येवाक्षरं परं च। तयोर्हि प्रतीकमेतदक्षरम्, एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वोपास्यब्रह्मेति यो यदिच्छति परमपरं वा तस्य तद्भवति। परं चेज्ज्ञातव्यमपरं चेत्प्राप्तव्यम्।

संस्कृतव्याख्या—एतद् एव हि अक्षरम्—प्रणवात्मकम्, ब्रह्म-ब्रह्म-

[शां०] यद्यहं योग्यः प्रसन्नश्चासि भगवन्मां प्रति—अन्यत्र धर्माच्छास्त्रीयाद्धर्मानुष्ठानात्तत्फलात्तत्कारकेभ्यश्च पृथग्भूतमित्यर्थः। तथान्यत्र अधर्मात्तथान्यत्रास्मात्कृताकृतात् कृतं कार्यमकृतं कारणमस्मात् अन्यत्र। किं चान्यत्र भूताच्चातिक्रान्तात्कालाद्भव्याच्च भविष्यतश्च तथा वर्तमानात्, कालत्रयेण यन्न परिच्छिद्यत इत्यर्थः। यद् ईदृशं वस्तु सर्वव्यवहारगोचरातीतं पश्यसि तद्वद मह्यम्।

संस्कृतव्याख्या—धर्मः-उपायभूत यज्ञादिकर्म तस्माद् अन्यत्र-भिन्नः अधर्मात्-अधर्मः उपेयभूत काम्यकर्मफलम्, मोक्षोपाये काम्यकर्म तथा तस्य फलम् उभेऽपि प्रतिबन्धके तच्च, 'सुखसङ्गेन बध्नाति—ज्ञानसङ्गेन चानघ' इति गीतायां भगवतोक्तत्वात् तस्माद् अन्यत्र-भिन्न.—विलक्षणः इत्यर्थः, अस्मात् कृताकृतात्—इदशब्दार्थोऽत्र बुद्धिस्थलक्षणोपेता—कर्मकर्ता गृह्यते स एव साधकः तस्मादपि विलक्षण, भूतात् भव्यात् च—अन्यत्र कालत्रयपरिच्छेदराहित्यम् यत् पश्यसि तत् मोक्षरूपम्-आत्मस्वरूपम् वद—कथय।

हि० श०—धर्मात्=यज्ञादि कर्त्तव्य कर्मों से। अधर्मात्=अधर्म अर्थात् शास्त्रनिषिद्ध कर्मों से। अन्यत्र=अतीत। अस्मात्=इससे अन्यत्र=भिन्न। भूतात्=भूत काल से। भव्यात्=भविष्यत् काल से अन्यत्र=भिन्न, पृथक्। पश्यसि=देखते हो। तत् वद=उसे कहो।

भावार्थ—यज्ञादि साधन कर्म से जो उपाय भूत है उससे विलक्षण तथा तत्कम साध्य-फलभूत सुखादि से विलक्षण एवं कर्तृत्व भोक्तृत्व विशिष्ट कर्ता से विलक्षण और भूत, भविष्य और वर्तमान काल त्रय के परिच्छेद से विलक्षण जिसको आप समझ रहे हैं उस मोक्ष रूप आत्मतत्व का उपदेश हमको दीजिए।

इस प्रकार नचिकेता के पूछे जाने पर परम प्राप्य आत्मतत्व के वैभव पर प्रकाश डालते हुए हर्ष सूचक शब्दों से यमराज आगे बोले—

14. Question of Nachiketa–Let me know what is beyond just and unjust, what is different from cause and effect, and what is above from past and future.

ओकार का उपदेश

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदँ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥१५॥

पद०—सर्वे, वेदा, यत्, पदम्, आमनन्ति, तपांसि, सर्वाणि, च, यद्, वदन्ति । यद्, इच्छन्तः, ब्रह्मचर्यम्, चरन्ति, तत्, ते, पदम्, संग्रहेण, ब्रवीमि, ॐ इति एतत् ।

अन्वय.—सर्वे वेदा यत्पदम् आमनन्ति सर्वाणि तपांसि च यत् वदन्ति यत् इच्छन्तः ब्रह्मचर्य चरन्ति तत् पदम् ते संग्रहेण ब्रवीमि ओम् इति एतत् ।

[शा०] इत्येवं पृष्टवते मृत्युरुवाच पृष्टं वस्तु विशेषणान्तरं च विवक्षन् सर्वे वेदा यत्पद पदनीयं गमनीयमविभागेनामनन्ति प्रतिपादयन्ति तपासि सर्वाणि च यद्वदन्ति यत्प्राप्त्यर्थानीत्यर्थः । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य गुरुकुलवासलक्षणमन्यद्वा ब्रह्मप्राप्त्यर्थ चरन्ति तत्ते तुभ्य पद यज्ज्ञातुम् इच्छसि संग्रहेण सक्षेपतो ब्रवीमि ।

ओमित्येतत् । तदेतत्पद यद्बुभुत्सितं त्वया । यदेतद् ओमित्योशब्दवाच्यमोशब्दप्रतीकं च ।

संस्कृतव्याख्या—यत् पदम्-प्राप्यभूतम् स्थानम् सर्वे वेदा. आमनन्ति-साक्षात् परम्परया वा-प्रतिपादयन्ति, यथा "न जायते म्रियते वा कदाचित्" इत्यादि "अविनाशि तु तद् विद्धि" इत्याद्यपि, सर्वाणि-तपांसि वेदान्तभागा यद् वदन्ति, यदिच्छन्त.—यदभिलाषुकाः सन्तः ब्रह्मचर्य—गुरुकुलवासादिक्लेश सहन्ते, तत् पदम्-आस्पदम् ते तुभ्य संग्रहेणैव सक्षेपेणैव ब्रवीमि-कथयामि तच्च ॐ इति एतत्-प्रणव एव, प्रणवस्य ब्रह्मवाचकत्वम्, वेदान्तादिषु दृश्यते 'ॐ तत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मण-स्त्रिविधः स्मृतः' अकारोकारमकारावयवत्वेन रूपेण भिन्नार्थं प्रतिपादयन्नऽपि एकार्थं प्रतिपादयति इति भाव ।

प्राप्तिसाधनत्वाद् ब्रह्म (ओमित्यनेनैवाक्षरेण परमपुरुषमभिध्यायीत) इत्यादि उक्तत्वात् ब्रह्मप्राप्तिसाधनम्, एतद् एवहि अक्षरम् परम् सर्वेषु जपनीय-ध्यानीयेषु श्रेष्ठम् । एतद् एव हि अक्षरम् ज्ञात्वा—उपासकः, उपासमानः अनेनैव यद् यद् फलमिच्छति-मे भूयादिति तस्य तत्-लभ्यते इति भावः ।

हि० श०—हि=निश्चित रूप से । एतत्=यह । अक्षरम् एव = अक्षर ही परम्=परब्रह्म अथवा सर्वश्रेष्ठ । ज्ञात्वा = जानकर । यः = जो, यत् इच्छति= जिसकी इच्छा करता है । तस्य=उसको, तत्=वही ।

भावार्थ—यह प्रणवात्मक अक्षर ब्रह्म स्वरूप है ब्रह्मप्राप्ति के साधन होने से, अनेक वचनों से सिद्ध है कि ओम् इस अक्षर से परम पुरुष की उपासना करनी चाहिए तथा यही अक्षर सब जप और ध्यान किये जाने में श्रेष्ठ है, इस अक्षर ब्रह्म की जो उपासना करता है वह जिस जिस फल की कामना करता है उसे वह सब प्राप्त होता है ।

16 The letter 'Om' is the Brahman and this is supreme. Anyone who knows this word meditating on fulfils his desire whatever it may be.

एतदालम्बनम् श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।

एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१७॥

पद०—एतद्, आलम्बनम्, श्रेष्ठम्, एतद्, आलम्बनम्, परम्, एतद्, आलम्बनम्, ज्ञात्वा, ब्रह्मलोके, महीयते ।

अन्वयः—एतत् श्रेष्ठम् आलम्बनम्, एतत् परम् आलम्बनम् एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।

[शा०] यत एवमत—एतदालम्बनमेतद्ब्रह्मप्राप्त्यालम्बनाना श्रेष्ठं प्रशस्यतमम् एतदालम्बनं परमपरं च परापरब्रह्मविषयत्वात् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते परस्मिन् ब्रह्मणि । अपरस्मिश्च ब्रह्मभूतो ब्रह्मवदुपास्यो भवतीत्यर्थः ।

संस्कृतव्याख्या—एतद्-प्रणवरूपम्, आलम्बनम्—आश्रयणम्, श्रेष्ठम्, सर्वेषु ध्यानादि-उपायेषु इति शेषः, अत एव एतदालम्बनम् परम् सर्वोत्कृष्टम् ।

एतद् आलम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके-प्रापणीये महीयते—तत्र गत्वा पूज्यमानो भवतीत्यर्थः।

हि० श०—एतत् = यह (ओङ्कार ही) श्रेष्ठम् = अत्युत्तम। आलम्बन = सहारा। आलम्बन = आश्रय। परम् = अन्तिम। ज्ञात्वा = जानकर। महीयते = पूजित होता है अथवा महत्त्व का स्थान प्राप्त करता है।

भावार्थ—इस प्रणवात्मब्रह्म का आश्रय सबसे श्रेष्ठ है इसलिए सबसे उत्कृष्ट भी है, इसको अच्छी तरह जान करके ब्रह्मलोक में भी जीव पूजनीय होता है।

17 This Om' is our best and last recourse By the help of this 'Om' one can know Brahman and can take an enjoy living in the abode of Him

आत्म-स्वरूप का निरूपण

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१८॥

पद०—न, जायते, म्रियते, वा, विपश्चित्, न, अयम्, कुतश्चित्, न, बभूव, कश्चित्। अजः, नित्यः, शाश्वतः, अयम्, पुराणः, न, हन्यते, हन्यमाने शरीरे।

अन्वय—विपश्चित् न जायते न वा म्रियते कुतश्चित् न बभूव अस्मात् किंचित् न अजः नित्यः शाश्वतः पुराणः अय शरीरे हन्यमाने न हन्यते।

[शां०] अन्यत्र धर्मादित्यादिना पृष्टस्यात्मनोऽशेषविशेषरहितस्य आलम्बनत्वेन प्रतीकत्वेन चोङ्कारो निर्दिष्टः अपरस्य च ब्रह्मणो मन्द-मध्यमप्रतिपत्तॄन्प्रति। अथेदानीं तस्योङ्कारालम्बनस्यात्मनः साक्षात्स्वरूप-निर्दिधारयिषया इदमुच्यते—न जायते नोत्पद्यते म्रियते वा न म्रियते चोत्पत्तिमतो वस्तुनोऽनित्यस्य अनेकविक्रियाः तासामाद्यन्ते जन्मविनाश-लक्षणे विक्रिये इहात्मनि प्रतिषिध्येते प्रथमं सर्वविक्रियाप्रतिषेधार्थं न जायते म्रियते वेति। विपश्चिन्मेधावी अविपरिलुप्तचैतन्यस्वभावात्।

कि च नायमात्मा कुतश्चित् कारणान्तराद्बभूव । स्वस्माच्च आत्मनो न बभूव कश्चिदर्थान्तरभूत. । अतोऽयमात्माजो नित्य. शाश्वतोऽपक्षय-विवर्जित । यो ह्यशाश्वत. सोऽपक्षीयते, अय तु शाश्वतोऽत एव पुराणः पुरापि नव एवेति । यो ह्यवयवोपचयद्वारेणाभिनिर्वर्त्यते स इदानी नवो यथा कुम्भादि. । तद्विपरीतस्त्वात्मा पुराणो वृद्धिविवर्जित इत्यर्थ. ।

यत एवमतो न हन्यते न हिंस्यते हन्यमाने शस्त्रादिभिः शरीरे। तत्स्थोऽप्याकाशवदेव ।

संस्कृतव्याख्या—अयम् विपश्चित्, न जायते–नोत्पद्यते, न म्रियते-जननानिषेधात् मरणमपि न जायते, अयम् कुतश्चित् न—उत्पादकशून्य इत्यर्थः, न बभव कश्चित्-पूर्वमनुष्यादिशरीररूपेण नोत्पन्नः, अत. पूर्वोक्तः न जायते इत्यादिहेतो अयम्-अजः उत्पत्तिरहित सन् शाश्वत सनातनः पुराणः पुरातनपुरुष. शरीरे हन्यमाने स न हन्यते ।

हि० श०—अयम् = यह । विपश्चित्=ज्ञानी (आत्मा) । न जायते= न तो उत्पन्न होता है । वा=या । न म्रियते = न मरता ही है । कुतश्चित् = किसी अन्य से उत्पन्न हुआ है । न कश्चित् - न (इसी से) कोई (उत्पन्न हुआ है)। अज = अजन्मा । नित्य = नित्य । शाश्वतः = सदा एक रस रहने वाला । पुराणः = प्राचीन है । शरीरे हन्यमाने = शरीर के नष्ट होने पर भी । न हन्यते = मारा नहीं जाता ।

भावार्थ—यह सर्ववेत्ता आत्मा उत्पत्ति और मरण का आश्रय नहीं होता तथा कर्तृत्व शून्य है, मनुष्यादि रूप शरीर रूप से कभी उत्पन्न नहीं होता, इन हेतुओं से यह अज, सनातन और पुरातन कहा जाता है, शरीर के मरने पर भी यह कभी नहीं मरता है ।

18 The Self is neither born nor does it die Neither it has brought anything into existence nor anything has been brought into existence from it This Soul has no birth and no beginning or end It is perpetual and ancient It has no harm when the body is killed

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायँ हन्ति न हन्यते ॥१९॥

पद०—हन्ता, चेत्, मन्यते, हन्तुम्, हतः, चेत्, मन्यते, हतम् । उभौ, तौ, न, विजानीतः, न, अयम्, हन्ति, न, हन्यते ।

अन्वय.—हन्ता चेत् हन्तु मन्यते चेत् हतः (आत्मानम्) हत मन्यते उभौ तौ न विजानीतः अयम् (आत्मा) न हन्ति न हन्यते ।

[शा०] एवभूतमप्यात्मानं शरीरमात्रात्मदृष्टिर्हन्ता चेद्यदि मन्यते चिन्तयति हन्तुं हनिष्याम्येनम् इति योऽप्यन्यो हत. सोऽपि चेन्मन्यते हतमात्मान हतोऽहम् इत्युभावपि तौ न विजानीत, स्वमात्मानं यतो नायं हन्ति अविक्रियत्वादात्मनस्तथा न हन्यत आकाशवदविक्रियत्वादेव । अतोऽनात्मज्ञविषय एव धर्माधर्मादिलक्षणः संसारो न ब्रह्मज्ञस्य । श्रुति-प्रामाण्यान्न्यायाच्च धर्माधर्माद्यनुपपत्तेः ।

संस्कृतव्याख्या—हन्तु हन्ता मन्यते चेत्-अहमेनं हनिष्यामि इति स्वय कस्यचित् वधकर्ता जानाति, यद्वा हतः हननाश्रय. स्वय हतम् मन्यते चेत् तौ उभावपि न विजानीतः-एतद्विषयज्ञानशून्यौ एव भवतः, यतः अयम् न कञ्चित् हन्ति, न स्वयम् केनचित् हन्यते ।

हि० श०—चेत्=यदि । हन्ता = मारनेवाला । हन्तुम् = मारने में सक्षम । मन्यते = मानता है । चेत् = यदि । हतः = मारा गया हुआ । हतम्= (अपने को) मारा गया । तौ उभौ = वे दोनो ही । न विजानीतः=(आत्मा के स्वरूप को) नहीं जानते । अयम्=यह (आत्मा) न हन्ति=न मारता है । न हन्यते=न (किसी के द्वारा) मारा ही जाता है ।

भावार्थ—इसको जो मारने वाला जानता है और जो अपने को मारा हुआ समझता है ये दोनों ही इस आत्मविषयक ज्ञान से शून्य हैं क्योंकि वस्तुतः यह न किसी को मारता है न किसी से मारा जाता है ।

जीवात्म तत्व को कहकर आगे परमात्म तत्व को कहते हैं, अणोरणीयान् इत्यादि ।

19. If the destroyer thinks that he has destroyed, and if the

destroyed thinks that he has been destroyed–both of them are equally ignorant Neither He kills nor He is killed.

अणोरणीयान्महतो महीया-
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातु प्रसादान्महिमानमात्मन ॥२०॥

पद०—अणो., अणीयान्, महतः, महीयान्, आत्मा, अस्य, जन्तोः, निहितः, गुहायाम्, तम्, अक्रतुः पश्यति, वीतशोक., धातु., प्रसादात्, महिमानम्, आत्मन. ॥२०॥

अन्वयः—अणोः अणीयान् महत महीयान् आत्मा अस्य जन्तो., गुहायाम् निहितः अक्रतु वीतशोकः धातुप्रसादात् आत्मनः तम् महिमानम् पश्यति ।

[शा०] कथं पुनरात्मानं जानाति इत्युच्यते–अणोः सूक्ष्मादणीयाञ्श्यामाकादेरणुतरः । महतो महत्परिमाणान्महीयान्महत्तार. पृथिव्यादेः अणु महद्वा यदस्ति लोके वस्तु तत्तेनैवात्मना नित्येन आत्मवत्संभवति । तदात्मना विनिर्मुक्तमसत्संपद्यते । तस्माद् असावेवात्माणोरणीयान्महतो महीयान्सर्वनामरूपवस्तूपाधिकत्वात् । स चात्मास्य जन्तोर्ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तस्य प्राणिजातस्य गुहाया हृदये निहित आत्मभूत. स्थित इत्यर्थः ।

तदात्मानं दर्शनश्रवणमननविज्ञानलिङ्गमक्रतुरकामो दृष्टादृष्टबाह्यविषयोपरतबुद्धिरित्यर्थः । यदा चैवं सदा मनआदीनि करणानि धातवः शरीरस्य धारणात्प्रसीदन्तीत्येषा धातूना प्रसादादात्मनो महिमानं कर्मनिमित्तवृद्धिक्षयरहितं पश्यत्ययम् अहमस्मीति साक्षाद्विजानाति । ततो वीतशोको भवति ।

संस्कृतव्याख्या—अणोः सर्वचेतनापेक्षया सूक्ष्मात् अणीयान्—अणुतरप्रमाणः सकलचेतनाऽचेतनान्तःप्रवेशयोग्यः, महतः आकाशादेरपि महीयान्—महत्तर. स्वाव्याप्यवस्तुरहितः अस्य जन्तोः प्रत्यगात्मरूपस्य जीवात्मन इति यावत्, गुहाया निहितः आत्मान्त. प्रविश्य नियन्तृत्वेन स्थितः, तं-तादृश परमात्मानम्-अक्रतुः-काम्यकर्मरहितः वीतशोकः सन् धातुः धारकस्य

परमात्मनः प्रसादात् आत्मनो महिमानम् पश्यति । 'जुष्ट यदापश्यत्यन्यमीशम्' इत्याद्युक्तत्वात् ।

हि० श०—अस्य=इस । जन्तोः=जीवात्मा के । गुहायाम्=हृदयरूपी गुफा में । निहितः=स्थित । आत्मा=परमात्मा । अणोः=सूक्ष्म से । अणीयान्=अतिसूक्ष्म । महतः=महान् से भी, महीयान्=महान् है । आत्मनः=परमात्मा के । तम्=उस, महिमानम्=महिमा को । अक्रतुः=निष्काम कर्म करने वाला । वीतशोक शोक रहित । धातुः प्रसादात्=परब्रह्म की कृपा से । पश्यति=देख पाता है ।

भावार्थ—वह परमात्मा सर्वचेतनाचेतन की अपेक्षा सूक्ष्म होने के कारण अति अणुतर-सूक्ष्मतर रूप का है, क्योंकि सकल चेतनाचेतन में प्रवेश के योग्य है तथा महत् परिमाण वाले आकाशादि से भी महत्तर अर्थात् अपने से व्यापक वस्तु से रहित है । और इस प्रत्यगात्म जीवात्मा के अन्तः प्रवेश करके स्थित है, उस परमात्मा को काम्यकर्मरहित मोक्षार्थी निष्काम कर्म भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करनेवाला हर्ष शोक रहित होकर उस परमात्मा के प्रसाद से आत्मा की महिमा को देखता है । (जुष्ट यदा पश्यति अन्यमीशम्) इस प्रकार व्यास सूत्र का यही तात्पर्य है ।

20. The self is subtler than the subtle and similarly greater than the great It is found in the heart of every living-body. The man who has given up all his desires, achieves the glory of the soul through the calmness of the senses and he becomes free from sorrow

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥२१॥

पद०—आसीनः, दूरम्, व्रजति, शयानः याति, सर्वतः । कः, तम्, मदामदम्, देवम्, मदन्यः, ज्ञातुम्, अर्हति ।

अन्वय—आसीनः दूरं व्रजति शयानः सर्वतः याति मदामदम् देवं मदन्यः कः ज्ञातुम् अर्हति ।

[शा] अन्यथा दुर्विज्ञेयोऽयमात्मा कामिभिः प्राकृतपुरुषैः, यस्मात्-

आसीनोऽवस्थितोऽचल एव सन् दूरं व्रजति । शयानो याति सर्वत एवमसावात्मा देवो मदामदः समदोऽमदश्च सहर्षोऽहर्षश्च विरुद्धधर्मवानतोऽशक्यत्वाज्ज्ञातुं कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ।

अस्मदादेरेव सूक्ष्मबुद्धेः पण्डितस्य सुविज्ञेयोऽयमात्मा स्थितिगतिनित्यानित्यादिविरुद्धानेकधर्मोपाधिकत्वाद्विरुधर्मवत्त्वाद्विश्वरूप इव चिन्तामणिवदवभासते । अतो दुर्विज्ञेयत्वं दर्शयति कस्त मदन्यो ज्ञातुमर्हतीति ।

करणानामुपशमः शयनं करणजनिरस्यैकदेशविज्ञानस्य उपशमः शयानस्य भवति । यदा चैवं केवलसामान्यविज्ञानत्वात् सर्वतो यातीव यदा विशेषविज्ञानस्थः स्वेन रूपेण स्थित एव सन्मनआदिगतिपु तदुपाधिकत्वाद् दूरं व्रजतीव । स चेहैव वर्तते ।

सं० व्या०—आसीन -सर्वत्रस्थितोऽपि जीवद्वारा दूरगन्तृधर्मा, तत्र भवति- अतो दूरम् गच्छतीति व्यवहार , एवमेव शयानोऽपि सर्वतः याति सर्वत्र गच्छति, अतः तं परमात्मानं मदामदम् देव- -हर्ष-अहर्षादि आरोपित विरुद्धधर्मम्, न तु वास्तविकम् मदन्यः परमात्मप्रसादानुगृहीतः म दृश- जनाद् अन्यः इतर को वा ज्ञातुमर्हति ।

हि० श०—आसीन. = बैठा होने पर भी । दूर व्रजति = दूर चला जाता है, शयानः = सोता हुआ । सर्वतः याति = सब ओर चला जाता है । तम् = उस । मदामदम्—हर्ष और अहर्ष दोनों से रहित । देवम् = देव को । मदन्यः = मुझसे भिन्न, मेरे अतिरिक्त । कः = कौन । ज्ञातुम् = जानने में अर्हति = समर्थ है ।

भावार्थ—सब जगह वर्तमान रहते हुए भी चेतन द्वारा दूर गमनत्वादि उपाधि रूप धर्मवाला है और एकत्र स्थित भी सर्वत्र व्याप्त होने से गमनशील है । ऐसे हर्ष और अहर्षादि आरोपित न कि वास्तविक धर्मवाले उस परमात्मतत्व को भगवत्प्रसाद से अनुगृहीत हमसे भिन्न दूसरा कौन जानने मे समर्थ हो सकता है ऐसा यमराज ने कहा ।

21 When sitting it goes very far, when sleeping it moves everywhere Except me who knows that Self which is beyond joy and sorrow.

अशरीरँ शरीरेष्वनवस्थितेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥२२॥

पदच्छेद—अशरीरम्, शरीरेषु, अनवस्थेषु, अनवस्थितम् । महान्तम्, विभुम्, आत्मानम्, मत्वा, धीर॰, न, शोचति ।

अन्वय—शरीरेषु अशरीरम् अनवस्थेषु अवस्थितम् महान्तम् विभुम् आत्मानम् मत्वा धीर न शोचति ।

[शा०] तद्विज्ञानाच्च शोकात्यय इत्यपि दर्शयति—अशरीर स्वेन रूपेण आकाशकल्प आत्मा तमशरीर शरीरेषु देवपितृमनुष्यादिशरीरेषु अनवस्थेष्वस्थितिरहितेष्ववस्थित नित्यमविकृतमित्येतत्, महान्त महत्त्वस्यापेक्षिकत्वशङ्कायामाह—विभु व्यापिनमात्मानम्—आत्मग्रहण स्वतोऽनन्यत्वप्रदर्शनार्थम्, आत्मशब्द प्रत्यगात्मविषय एव मुख्यस्तमीदृशमात्मान मत्वा अयमहमिति धीरो धीमान्न शोचति । न ह्येव विधस्यात्मविद शोकोपपत्ति ।

संस्कृत व्याख्या—अशरीरम्—कर्मकृतशरीररहितम्, अनवस्थेषु—नश्वरेषु शरीरेषु, अवस्थितम्–नित्यतपातन्त्रस्थितम्, महान्तम्–प्रसिद्धवैभवशालिनम्, विभुम्–सर्वव्यापिनम्, आत्मानम्–स्वस्वरूपम्, मत्वा—सम्यक्परिज्ञाय, धीर: ज्ञानवान्, न शोचति-नाकृतार्थात्मत्वमनुभवति ।

हि० शब्दार्थ—अनवस्थेषु = स्थिर न रहने वाले । शरीरेषु = शरीर मे । अशरीरम् = शरीर रहित रूप से । अवस्थितम् = नित्यरूप से स्थित है । महान्तम् = सबसे महान् । विभुम् = सर्वव्यापक । आत्मानम् = उस आत्मा को । मत्वा = जानकर । धीर = बुद्धिमान पुरुष । न शोचति = शोक नही करता ।

भावार्थ—आत्मा के सम्बन्ध में यम ने फिर कहा—अनित्य शरीरो मे नित्य आत्मा स्वयं आकार रहित होकर रहता है । इसी नित्य, महान्, सर्वव्यापक आत्मा को अच्छी तरह से जान लेने पर ज्ञानी शोक से मुक्त हो जाता है ।

22. Yama said —Knowing the soul as bodiless in the midst of bodies, as firm among the fleeting things and as great and pervasive, the wise casts off all grief.

नायमात्माप्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥२३॥

पदच्छेद— न, अयम्, आत्मा, प्रवचनेन, लभ्यः, न मेधया, न बहुना, श्रुतेन, यम्, एव, एष, वृणुते, तेन, लभ्य , तस्य, एष, आत्मा, विवृणुते, तनूँ , स्वाम् ।

अन्वय—अयम् आत्मा प्रवचनेन न लभ्य , न मेधया न बहुना श्रुतेन (लभ्यः) । एष यं वृणुते तेन एव लभ्य , एष तस्य स्वा तनू विवृणुते ।

[शां०] यद्यपि दुर्विज्ञेयोऽयमात्मा तथाप्युपायेन सुविज्ञेय एवेत्याह नायमात्मा प्रवचनेनानेकवेदस्वीकरणेन लभ्यो ज्ञेयो नापि मेधया ग्रन्थार्थधारणशक्त्या । न बहुना श्रुतेन केवलेन । केन तर्हि लभ्य इत्युच्यते- यमेव स्वात्मानमेष साधको वृणुते प्रार्थयते तेनैवात्मना वरित्रा स्वयमात्मा लभ्यो ज्ञायत एवमित्येतत् । निष्कामस्यात्मानम् एव प्रार्थयत आत्मनैवात्मा लभ्यत इत्यर्थः । कथ लभ्यत इत्युच्यते—तस्यात्मकामस्यैष आत्मा विवृणुते प्रकाशयति पारमार्थिकी तनूं स्वा स्वकीयां स्वयाथात्म्यमित्यर्थ ।

सस्कृत व्याख्या—अयमात्मा प्रवचनेन-अत्र प्रवचन शब्द. प्रवचनसाधन- मननार्थपर अग्रे मेधया श्रुतेनेति श्रवणनिदिध्यासनपरत्वात् । अतः अयं- आत्मा, प्रवचनेन-मननेनेत्यर्थं , न लभ्य -न प्राप्यः, नापि बुद्ध्या-मेधया, नापि श्रुतेन-स्वाध्यायेन लभ्य । एष आत्मा (परमात्मा), यं-साधकं, वृणुते- स्वीकरोति, तेनैवोपायेन लभ्य नान्यथा, एष आत्मा तस्य-उपासकस्य (अग्रे) स्वा-निजा, तनु-स्वरूपं, विवृणुते-प्रकाशयति ।

हिन्दी शब्दार्थ—अयम् = यह, आत्मा = परमात्मा, प्रवचनेन = उपदेश सुनने मात्र से, न लभ्यः = प्राप्त किये जाने योग्य नही है, न मेधया = न बुद्धि से, न बहुना श्रुतेन = न बहुत अधिक शास्त्रो के अध्ययन से, एषः = यह परमात्मा, यम् = जिस ज्ञानी को, वृणुते = स्वीकार कर लेता है, तेन = उसी के द्वारा, लभ्यः = प्राप्त करने योग्य है, एषः = यह परमात्मा, तस्य = उस साधक के समक्ष, स्वा = अपनी, तनूम् = शरीर को, विवृणुते = स्वय ही प्रकट कर देता है ।

हिन्दी शब्दार्थ— दुश्चरितात् = पापकर्मो से, न अविरत = जो हटा नही, अशान्त = जिसका मन शान्त नही है, असमाहितः = जिसका मन और इन्द्रियाँ वश मे नही, अशान्तमानसः = अशान्तचित्तवाला, प्रज्ञानेन = प्रकृष्ट आत्मज्ञान से, एनम्— उस परमात्मा को, न आप्नुयात् = प्राप्त नही कर सकता है ।

भावार्थ—जिसने पाप कर्मो से अपने को नही हटाया, जो शान्त नही, जिसकी इन्द्रियाँ और मन वश में नही एव चचल चित्तवाला है वह केवल अपने प्रचण्ड ज्ञान के भरोसे उस परमतत्व (आत्मा) को प्राप्त नही कर सकता ।

24 He who has not desisted from wicked ways, whose senses are not under control, whose mind is not concentrated and nor free from anxiety, does not obtain it. It is quite clear that the soul is obtainable only by high spiritual knowledge.

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ २५ ॥

पदच्छेद—यस्य, ब्रह्म, च क्षत्रम्, च उभे, भवत., ओदनः । मृत्यु यस्य, उपसेचनम्, कः, इत्था, वेद, यत्र, सः ।

अन्वय—यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे ओदनः भवतः, मृत्यु यस्य, उपसेचनं सः यत्र इत्था क. वेद ।

[शां०] यस्त्वनेवं भूत.—यस्यात्मनो ब्रह्मक्षत्रे सर्वधर्म विधारके अपि सर्वत्राणभूते उभे ओदनोऽशन भवत स्याताम्, सर्वहरोऽपि मृत्युर्यस्योपसेचनम् इवौदनस्य, अशनत्वेऽप्यपर्याप्तस्त प्राकृतबुद्धिर्यथोक्तसाधनरहितः सन् क इत्था इत्थमेव यथोक्तसाधनवानिवेत्यर्थ., वेद विजानाति यत्र स आत्मेति ।

सस्कृत व्याख्या— विरला एव आत्मज्ञानिनो भाव प्रकाशयन् यमः प्राह— ब्रह्मक्षत्रपद—ब्रह्मक्षत्राख्य- वर्णद्वयोपलक्षितचराचरात्मकमिदं जगद् यस्य परमात्मनः ओदनम्—भोग्यम् भवति, मृत्यु —चराचरभक्षकः स्वय यस्य अघमानत्वात् उपसेचनं—दध्यादिरूपेणोपसेचन कर्मभवति, तं कः इत्थं सर्वतोभावेन ज्ञातुं शक्नोति यद् स आत्मा कुत्रास्ति । न कश्चिदपि जानातीत्यर्थ. ।

हिन्दी शब्दार्थ—यस्य = जिस परमात्मा के, ब्रह्म = ब्राह्मण, क्षत्रं = क्षत्रिय, ओदन· = भोजन, भवतः = हो जाते है। मृत्यु --सर्वनाशक शक्ति काल भी, यस्य = जिस परमात्मा का, उपसेचन = शाक, चटनी बनता है, स· = वह ईश्वर, यत्र = जहाँ (कहाँ) इत्था = किस रूप में है, क = कौन, वेद = जानता है।

भावार्थ--जिस परमात्मा के ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों ही भोज्य पदार्थ हैं अर्थात् सम्पूर्ण विश्व ही जिसका भक्ष्य पदार्थ है, मृत्यु स्वय जिसके भोज्य पदार्थ में चटनी की तरह स्थित है उस परमतत्त्व को कौन बता सकता है कि वह कहाँ है ? अर्थात् कोई नही बता सकता।

25. Who is able to know and to say that where It is? Whose food is both Brahmana and Kshatriya and for which death takes the place of sance

इति प्रथमाध्याये द्वितीया वल्ली समाप्ता

प्रथम अध्याय

तृतीया वल्ली

इस वल्ली मे परमात्मा की प्राप्ति के साधनो का वर्णन किया गया है। इससे पूर्व द्वितीय पल्ली मे स्पष्ट किया जा चुका है कि जीवात्मा का लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति है।

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति
पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥ १ ॥

पदच्छेद--ऋतम्, पिबन्तौ, सुकृतस्य, लोके, गुहाम्, प्रविष्टौ, परमे, परार्धे, छायातपौ, ब्रह्मविद , वदन्ति, पञ्चाग्नय , ये, च, त्रिणाचिकेताः।

अन्वय.--ब्रह्मविदः ये च पञ्चाग्नय (ये च) त्रिणाचिकेताः (ते) सुकृतस्य ऋत पिबन्तौ लोके गुहा परमे परार्धे प्रविष्टौ छायातपौ वदन्ति।

[शा०] ऋत पिबन्तावित्यस्या वल्लया सम्बन्ध—विद्याविद्ये नानाविरुद्धफले इत्युपन्यस्ते न तु सफले ते यथावन्निर्णीते, तन्निर्णयार्था रथरूपककल्पना, तथा च प्रतिपत्तिसौकर्यम्। एव च प्राप्तृप्राप्यगन्तृ गन्त-व्यविवेकार्थं द्वावात्ममानो उपन्यस्येते—ऋत सत्यमवश्यभावित्वात्। कर्म-फल पिबन्तौ, एकस्तत्र कर्मफल पिबति भुङ्क्ते नेतर, तथापि पातृ-सम्बन्धात्पिबन्तौ इत्युच्यते छत्रिन्यायेन, सुकृतस्य स्वय कृतस्य कर्मणः ऋतम् इति पूर्वेण सम्बन्ध; लोकेऽस्मिन् शरीरे गुहा गुहायाम् बुद्धौ प्रविष्टौ, परमे बाह्यपुरुषाकाशसस्थानापेक्षया परमम्, परस्य ब्राह्मणोऽर्धं स्थान परार्धम्। तस्मिन् ह पर ब्रह्मोपलभ्यते, अतस्तस्मिन् परमे परार्ध हार्दाकाशे प्रविष्टावित्यर्थ। तौ चच्छायातपाविव विलक्षणो ससारित्वा-

ससारित्वेन ब्रह्मविदो वदन्ति कथयन्ति । न केवलमकर्मिण एव वदन्ति, पञ्चाग्नयो गृहस्था ये च त्रिणाचिकेता: त्रि कृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो यैस्ते त्रिणाचिकेता ।

सस्कृत व्याख्या—जीवब्रह्मणो सम्बन्धं प्रतिपादयन् यमो वदति—लोके जीवब्रह्माणौ स्वकर्मण फल भुञ्जानौ स्त । यद्यपि सुकृतकर्मणा भोक्ता जीव एव अस्ति न तु ब्रह्मा तथापि द्वयो साहचर्येण द्विवचनमुक्तम् । ब्रह्मज्ञानिन:, पञ्चमहायज्ञकर्त्तार गृहस्था, त्रिणाचिकेता याजका: सर्व एव परमोत्कृष्टस्थाने बुद्धिगुहाया प्रविष्टौ इमौ द्वौ छायातपौ इव सम्बद्धौ निगदन्ति ।

हिन्दी शब्दार्थ—सुकृतस्य = कर्मो के फलस्वरूप, लोके = शरीर मे, परमे परार्धे = उत्कृष्ट स्थान मे, गुहाम् = बुद्धि रूपी गुफा मे, प्रविष्टौ = प्रवेश किए हुए, ऋतम् = अवश्यम्भावी कर्मफल को, पिबन्तौ = भोग करते हुए, छाया-आतपौ = छाया और घाम के समान (अज्ञानी-ज्ञानी), ब्रह्मविद = ज्ञानी लोग, पञ्चाग्नय: = गृहस्थ लोग, ये च = और जो, त्रिणाचिकेता: = विधिपूर्वक अग्नि-उपासक, विदन्ति = जानते है ।

भावार्थ—ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी लोग, पाँच प्रकार से अग्नि की उपासना करनेवाले साधारण गृहस्थ लोग एवं आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि की विधिपूर्वक पूजा करनेवाले विद्वान् लोग भी, अपने कर्मो के फल को इस शरीर रूपी लोक मे भोगनेवाले, उत्कृष्ट हृदयाकाश रूपी बुद्धि मे प्रविष्ट जीव और ब्रह्म को छाया (अज्ञान) एवं आतप (प्रकाश) के समान मानते है ।

1. The superior and inferior souls are compared here to shade and light. Both of them enjoy the results of their work in the world entered the cave, the highest place of the supreme power. The knowers of Brahman call them shadow and sun light, worshipers of the five fires and sacrificers of the Nachiketa fires.

य: सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि । २॥

पदच्छेद—यः, सेतुः, ईजानानाम्, अक्षरम्, ब्रह्म, यत्, परम्, अभयम्, तितीर्षताम्, पारम, नाचिकेतम्, शकेमहि ।

अन्वय—ईजानानाम् य. सेतु पार तितीर्षताम् यत् अभयम् अक्षरम् पर ब्रह्म त नाचिकेतम् शकेमहि ।

[शा०] य सेतुरिव सेतुरीजानाना यजमानाना कर्मिणा दु खसन्तरणार्थत्वान्नाचिकेतोऽग्निस्त वय ज्ञातु चेतु च शकेमहि शक्नुवन्त । कि च यच्चाभय भयशून्य ससारपार तितीर्षता तर्तुमिच्छता ब्रह्मविदा यत्परमाश्रयमक्षरमात्माख्य ब्रह्म तच्च ज्ञातु शकेमहि शक्नुवन्त । परापरे ब्रह्मणी कर्मब्रह्मविदाश्रये वेदितव्ये इति वाक्यार्थ । एतयोरेव ह्युपन्यासकृत ऋत पिबन्ताविति ।

सस्कृत व्याख्या—यमो नचिकेत सम्बोधयन कथयति—नाचिकेसोऽग्नि परं ब्रह्म द्वयमपि अस्माभि ज्ञातु शक्यते । अयमग्नि उपासकाना यजमानाना सेतुर्भवति यतो हि एतमाश्रित्य जनाः दुःखादिकं तरन्ति । द्वितीय च यत् अनश्वरब्रह्मससारस्य पार गन्तुमिच्छताम् निर्भय स्थानमस्ति । इत्थं क्षर ब्रह्म, अग्निविद्यातत्वम् च उभौ तौ ज्ञातु वयं समर्थाः ।

हिन्दी शब्दार्थ—पारं तितीर्षताम् = जन्म-मरण रूपी सागर को पार करने की इच्छावाले, ईजानानाम् = यज्ञ करनेवाले जनो के लिए, य· सेतु = जो पुल है, अक्षरं = अविनाशी, पर ब्रह्म = परब्रह्म, अभयम् = निर्भय बनाने वाले, नाचिकेतम् = नाचिकेत नामक अग्नि को, शकेमहि = हम चयन करें ।

भावार्थ—जो नाचिकेतस अग्नि अपने उपासकों के लिए सेतु है और जो संसार-सागर को पार करनेवालो का विश्रामस्थल है, उस परब्रह्म को हम जानने में असर्थ है ! (इस श्लोक में मानव कल्याण हेतु कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड की ओर सकेत किया गया है ।)

2. We can understand both the Nachiketas fire which is the bridge for the sacrificers, and also we can understand the imperishable Brahman, the place where all fear disappears and which is the shelter for those who want to cross the ocean of the world.

आत्मानँ रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३ ॥

पदच्छेद—आत्मानम्, रथिनम्, विद्धि, शरीरम्, रथम्, एव, तु, बुद्धिम्, तु, सारथिम्, विद्धि, मन , प्रग्रहम्, एव च ।

अन्वय—आत्मानम् रथिनं विद्धि, शरीरं तु रथम् एव । बुद्धि तु सारथिं विद्धि, ब्रह्म त मन प्रग्रह एव च विद्धि ।

[शा०] तत्र य उपाधिकृत. ससारी विद्याविद्ययोरधिकृतो मोक्षगमनाय ससारगमनाय च तस्य तदुभयगमने साधनो रथ कल्प्यते—तत्र तत्रात्मानमृतप ससारिण रथिन रथस्वामिन विद्धि जानीहि। शरीर रथमेव तु रथवद्धहयस्थानीयैरिन्द्रियैराकृष्यमाणत्वाच्छरीरस्य । बुद्धि तु अध्यावसायलक्षणा सारथि विद्धि बुद्धिनेतृप्रधानत्वाच्छरीरस्य सारथिनेतृप्रधान इव रथ । सर्व हि देहगत कार्य बुद्धिकर्तव्यमेव प्रायेण । मनः सङ्कल्पविकल्पादिलक्षणं प्रग्रह रशना विद्धि। मनसा हि प्रगृहीतानि श्रोत्रादीनि करणानि प्रवर्तन्ते रशनयेवाश्वा ।

सस्कृत व्याख्या –हे नचिकेतस्त्वमात्मान रथस्य स्वामिन जानीहि। शरीर तु तस्यात्मनो रथ जानीहि एवं बुद्धि तस्य यन्तार अवेहि तथा मनश्च रश्मि जानोहि। इदन्तु स्पष्टमेवाम्ति यत् यत मनसा हि प्रगृहीतानि इन्द्रियाणि विषयेषु प्रवर्तन्ते ।

भावार्थ—आत्मा का शरीर के अन्य अंगो से सम्बन्ध बताते हुए यम ने कहा—हे नचिकेता ! तुम इस शरीर मे आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि एव मन को लगाम (रास) समझो ।

3. Yama said, Oh Nachiketas ! know the soul as lord of a chariot and body as the chariot itself Know the intellect as the charioteer and the mind indeed is the reins.

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥

पदच्छेद—इन्द्रियाणि, हयान्, आहु , विषयान्, तेषु, गोचरान्, आत्मा, इन्द्रिय, मन युक्तम्, भोक्ता, इति, आहु., मनोषिणः ।

अन्वय—मनीषिणः इन्द्रियाणि हयान् विषयान् तेषु गोचरान् आहुः आत्मेन्द्रियमनोयुक्त भोक्ता इति आहु॰ ।

[शा०] इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि हयान् आहु रथकल्पनाकुशला॰ शरीररथाकर्षणसामान्यात् । तेष्वेव इन्द्रियेषु हयत्वेन परिकल्पितेषु गोचरान्मार्गान्रूपादीन्विषयान् विद्धि । आत्मेन्द्रियमनोयुक्त शरीरेन्द्रियमनोभि सहित सयुक्तमात्मान भोक्तेति ससारीत्याहुर्मनीषिणो विवेकिन । न हि केवलस्यात्मनो भोक्तृत्वमस्ति वुद्धयाद्युपाधिकृतमेव तस्य भोक्तृत्वम् । तथा च श्रुत्यन्तर केवलस्याभोक्तृत्वमेव दर्शयति—"ध्यायतीव लेलायतीव" (बृ० उ० ४ । ३ । ७ ।) इत्यादि । एव च सति वक्ष्यमाणरथकल्पनया वैष्णवस्य पदस्यात्मतया प्रतिपत्तिरुपपद्येत नान्यथा स्वभावानतिक्रमात् ।

सस्कृत व्याख्या—विवेकिन इन्द्रियाणि चक्षुरादीनि हयान् अश्वान् आहुः प्रतिपादितवन्तस्तेषु विषयान् रसरूपादीन् गोचरान्, मार्गान् आहुः । इन्द्रियमनोयुक्तम् इन्द्रियैर्मनसा च युक्त यथा स्यात्तथेति आत्मा भोक्ताऽस्तीत्याहुः ।

हिन्दी शब्दार्थ—इन्द्रियाणि = इन्द्रियो को, हयान् = घोडे, आहुः = कहा है, विषयान् = संसारिक भोग्यपदार्थों को, गोचरान् = मार्ग, आत्मा-इन्द्रिय-मनः युक्तम् = आत्मा-इन्द्रिय मन समूह को, मनीषिण॰ = विद्वान लोग, भोक्ता = भोग करने वाला, आहु॰ = कहते है ।

भावार्थ—विचारको ने इन्द्रियो को घोडे, उनके विषयो को मार्ग कहा है । इन्द्रिय एव मन से युक्त आत्मा को फल भोगनेवाला स्वीकार किया है ।

4 The wise thinkers say, the senses are the horses and their objects are the roads. The enjoyer is the soul, endowed with body, sense and mind

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥ ५ ॥

पदच्छेद—य , तु, अविज्ञानवान्, भवति, अयुक्तेन, मनसा, सदा, तस्य, इन्द्रियाणि, अवश्यानि, दुष्टाश्वा॰, इव, सारथेः ।

अन्वय:—य. तु अविज्ञानवान् सदा अयुक्तेन मनसा भवति सारथे: दुष्टाश्वा इव तस्य इन्द्रियाणि अवश्यानि भवन्ति ।

[शा०] तत्रैव सति यस्तु बुद्ध्याख्य सारथिरविज्ञानवाननिपुणोऽविवेकी प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च भवति यथेतरो रथचर्यायामयुक्तेन अप्रगृहीतेनासमाहितेन मनसा प्रग्रहस्थानीयेन सदा युक्तो भवति तस्याकुशलस्य बुद्धिसारथे इन्द्रियाण्यश्वस्थानीयान्यवश्यानि अशक्यनिवारणानि दुष्टाश्वा अदान्ताश्वा इवेतरसारथेर्भवन्ति ।

सस्कृत व्याख्या—यस्तु बुद्धयाख्य: सारथिरकुशलो भवति एवं सर्वदा अव्यवस्थेन मनसा (चेतसा) प्रग्रहेग च तिष्ठति तस्य सारथेर्दुष्टा अश्वा इव, इन्द्रियाणि नियन्त्रणाद् बाह्यभूतानि भवन्ति । कथनस्यायमाशय यथा कश्चिद् प्रमादी चालको दुष्टान् घोटकान् नियन्त्रयितुमशक्तो भवति तेनैव प्रकारेण अव्यवस्थितजनोऽपि स्वेन्द्रियाणि वशीकर्तुं न प्रभवति ।

हिन्दी शब्दार्थ—य. तु = जो व्यक्ति । अयुक्तेन मनसा = अस्थिर मन से । सदा = हमेशा अविज्ञानवान् = प्रमादी । भवति = होता है । सारथे.–(उस) रथ चालक की । दुष्टाश्वा इव = दुष्ट घोडो के समान । इन्द्रियाणि = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एव पाँच कर्मेन्द्रियाँ । अवश्यानि (भवन्ति) = अनियन्त्रित रहती है ।

भावार्थ—जो विवेकशून्य बुद्धि (सारथि) सदा अस्त-व्यस्त बना रहता है उसके वश मे इन्द्रियाँ उसी प्रकार नही रहती जिस प्रकार प्रमादी रथचालक के अधीन चंचल घोडे नही रहते ।

5. One who is always unwise and ever associated with an uncontrolled mind can not controlles his senses like untrained horses to a charioteer.

यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ ६ ॥

पदच्छेद—य. तु, विज्ञानवान्, भवति, युक्तेन, मनसा, सदा, तस्य, इन्द्रियाणि, वश्यानि, सद्, अश्वा इव, सारथे. ।

अन्वय—यः तु सदा युक्तेन मनसा विज्ञानवान् भवति तस्य इन्द्रियाणि सारथे: सदश्वा इव वश्यानि भवन्ति ।

[शां०] यस्तु पुनः पूर्वोक्तविपरीत सारथिर्भवति विज्ञानवान्प्रगृहीतमना सामाहितचित्त सदा तस्याश्वस्थानीयानीन्द्रियाणि प्रवर्त्तयितु निवर्त्तयितु वा शक्यानि वश्यानि दान्ता सदश्वा इवेतरसारथे ।

सस्कृत व्याख्या—यस्तु बुद्धयाख्यः सारथिर्विज्ञानवान् ज्ञानसम्पन्नो भवति तथा सदा व्यवस्थितेन मनसा प्रग्रहेण च तिष्ठति । तस्य सारथेः सुशिक्षिता अश्वा इव इन्द्रियाणि वश्यानि वशगतानि भवन्ति ।

भावार्थ—ज्ञानी एव एकाग्र चित्तवाले साधक के वश में इन्द्रियाँ उसी प्रकार रहती है जिस प्रकार सजग चालक के अधीन सुशिक्षित घोडे रहते है ।

6 On other side, who is wise with his mind can controle his senses like the good horses of the charioteer

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदा शुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥ ७ ॥

पदच्छेद – य., तु, अविज्ञानवान, भवति, अमनस्कः, सदा. अशुचिः, न, स, तत्, पदम्, आप्नोति, संसारम्, च, अधिगच्छति ।

अन्वय—य. तु अविज्ञानवान् अमनस्क सदा अशुचि भवति स. तत् पदम् न आप्नोति संसारम् चाधिगच्छति ।

[शा०] तस्य पूर्वोक्तस्याविज्ञानवतो बुद्धिसारथेरिद फलमाह—यस्त्वविज्ञानवान्भवति अमनस्कोऽप्रगृहीतमनस्क सतत एवाशुचि सदैव, न स रथी तत्पूर्वोक्तमक्षर यत्पर पदम् आप्नोति तेन सारथिना । न केवलं कैवल्य नाप्नोति ससार च जन्ममरणलक्षणमधिगच्छति ।

सस्कृत व्याख्या—यो रथी (आत्मा) अविवेकी अनवहितश्च सः तु सदा अपवित्रो भवति । स आत्मा पूर्वोक्त ब्रह्मधाम पद कदापि लब्धु न शक्नोति अपितु संसारस्य जन्ममरणादिविविध दुःखजाल च अधिगच्छति–प्राप्नोति ।

हिन्दी शब्दार्थ—यस्तु = जो व्यक्ति, अविज्ञानवान् = विवेक रहित, अमनस्क = चचल, सदा अशुचिः = सदा मन-कर्म-वचन से अशुद्ध, भवति = होता हैं, सः = वह, तत्पदम् = उस मोक्षपद को, न आप्नोति = प्राप्त नही करता, (अपितु) ससारं अधिगच्छति = जन्ममरण रूपी ससार को प्राप्त करता है ।

भावार्थ—जिसका मन अव्यवस्थित रहता है वह अज्ञानी व्यक्ति सदा अपवित्र रहता है। यही कारण है कि वह, उस परम पद को कभी नही प्राप्त करता, अपितु बार-बार इसी चौरासी के चक्कर मे पड समार-यातनाएँ सहता है।

7. Who ever is unwise, careless and unmindful remains always impure and never gains that supreme goal, but descends to the world again.

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥ ८ ॥

पदच्छेद—यः, तु, विज्ञानवान्, भवति, समनस्कः, सदा, शुचिः सः, तु, तत्, पदम्, आप्नोति, यस्मात्, भूयः, न जायते ।

अन्वय—यः तु विज्ञानवान् समनस्क. सदा शुचि भवति सः तत् पदम् आप्नोति यस्मात् भूय न जायते ।

[शा०] यस्तु द्वितीयो विज्ञानवान् विज्ञानवत्सारथ्युपेतो रथी विद्वान् इत्येतत् युक्तमना समनस्क स तत् एव सदा शुचि· स तु तत्पदमाप्नोति, यस्मादाप्तात्पदाद् अप्रच्युत सन् भूय पुनर्न जायते संसारे ।

सस्कृत व्याख्या—यस्तु विशिष्टज्ञानसम्पन्नः समाहितमना जायते स तु सदा सर्वदा शुचि पवित्रोऽतस्तद्परमपदं, तद्बलेन एव लभते, यस्मात् स्थानात् स भूयो न जायते उत्पद्यते ।

भावार्थ—परन्तु जिस रथ (शरीर) का स्वामी ज्ञानवान्, सयत और पवित्र होता है वह उस परमोत्कृष्ट (मोक्ष) पद को प्राप्त कर लेता है जहाँ से फिर उसका जन्म नही होता ।

8. But, whoever has understanding, is wise mindful, always careful and pure, gets the goal from which he is never born again.

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९ ॥

पदच्छेद—विज्ञान-सारथि·, य. तु, मन·, प्रग्रहवान्, नर., सः, अध्वनः, पारम्, आप्नोति, तद्, विष्णो., परमम्, पदम् आप्नोति ।

अन्वय—यः तु नरः विज्ञानसारथि॰ मन॰ प्रग्रहवान् सः अध्वन. पारं तद् विष्णोः परम पदम् आप्नोति ।

[शा०] विज्ञानसारथिर्यस्तु यो विवेकबुद्धिसारथि पूर्वोक्तो मन.-प्रग्रहवान् प्रगृहीतमना समाहितचित्त सञ्शुचिर्नरो विद्वान् सोऽध्वनः ससारगते पार परमेव अधिगन्तव्यमित्येतदाप्नोति मुच्यते सर्वससार-बन्धनै. तद्विष्णो व्यापनशीलस्य ब्रह्मण परमात्मनो वासुदेवाख्यस्य परमं प्रकृष्ट पद स्थान सतत्त्वमित्येतद्यदसौ आप्नोति विद्वान् ।

सस्कृत व्याख्या—विशिष्टं ज्ञानम् यस्यासौ विज्ञानः एवभूतः सारथिर्यस्येति, भाव । एतादृशः विशिष्टो समाहितचित्तो रथवाहक एव ससारमार्गस्य पारम् चरमलक्ष्यं लक्षीकृत्य व्यापकस्य विष्णोः प्रसिद्ध शास्त्रोक्त पद स्थान लभते ।

भावार्थ—जो विवेकी पुरुष बुद्धिरूपी सारथी से युक्त होकर मन रूपी लगाम को अपने वश मे रखता है । वह परम साधक ही भवसागर के उस पार स्थित भगवान विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है ।

9 The wise man, who has, as his charioteer and who has under control the reins of the mind, achieves the end of the road, that is the highest place of Visnu

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ १० ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥

पदच्छेद—इन्द्रियेभ्य॰, परा., हि, अर्था॰, अर्थेभ्य॰, च, परम्, मन॰, मनस॰, तु, परा, बुद्धि , बुद्धेः, आत्मा, महान्, परः, महत , परम, अव्यक्तम्, अव्यक्तात्, पुरुषः, पर॰, पुरुषात्, न, अपरम्, किंचित्, सा, काष्ठा, सा, परागति ।

अन्वय—इन्द्रियेभ्य॰ अर्था परा. अर्थेभ्यश्च मनः परम् मनस तु बुद्धिः परा बुद्धेः महान् आत्मा परः महत अव्यक्तम् परम् अव्यक्तात् पुरुष. परः पुरुषात् परं न किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ।

[शा०] अधुना यत्पद गन्तव्यं तस्य इन्द्रियाणि—स्थूलान्यारभ्य सूक्ष्मतारतम्यक्रमेण प्रत्यगात्मतया अधिगम कर्तव्य इत्येवमर्थमिदम् आरभ्यते-स्थूलानि तावदिन्द्रियाणि तानि यैरर्थैरात्मप्रकाशनाय आरब्धानि तेभ्य इन्द्रियेभ्य स्वकार्येभ्यस्ते परा ह्यर्था सूक्ष्मा महान्तश्च प्रत्यगात्मभूताश्च। तेभ्योऽप्यर्थेभ्यश्च पर सूक्ष्मतर महत्प्रत्यगात्मभूत च मन। मन शब्दवाच्य मनस आरम्भक भूतसूक्ष्म सकल्पविकल्पाद्यारम्भकत्वात्। मनसोऽपि परा सूक्ष्मतरा महत्तरा प्रत्यगात्मभूता च बुद्धि, बुद्धिशब्दवाच्यमध्यवसायाद्यारम्भक भूतसूक्ष्मम्। बुद्धेरात्मा सर्वप्राणिबुद्धीना प्रत्यगात्मभूतत्वादात्मा महान्सर्वमहत्वात्। अव्यक्ताद्यत्प्रथम जात हैरण्यगर्भं तत्व बोधाबोधात्मक महानात्मा बुद्धे पर इत्युच्यते।

महतोऽपि पर सूक्ष्मतर प्रत्यगात्मभूत सर्वं महत्तर च अव्यक्त सर्वस्य जगतो बीजभूतम् अव्याकृतनामरूपसतत्त्व सर्वकार्याकारणशक्तिसमाहाररूपम् अव्यक्ताव्याकृताकाशादिनामवाच्य परमात्मन्योतप्रोतभावेन समाश्रित वटकणिकायामिव वटवृक्षशक्ति। तस्मादव्यक्तात्पर सूक्ष्मतर सर्वकार्यकारणत्वात्प्रत्यगात्मत्वाच्च महाश्च अत एव पुरुष सर्वपूरणात्। ततोऽन्यस्य परस्य प्रसङ्गं निवारयन्नाह पुरुपान्न पर किंचिदिति। यस्मान्नास्ति पुरुपात् चिन्मात्रघनात् पर किंचिदपि वस्त्वन्तर तस्मात्सूक्ष्मत्वमहत्त्वप्रत्यगात्मत्वाना सा काष्ठा निष्ठा पर्यवसानम्। अत्र हीन्द्रियेभ्यः आरभ्य सूक्ष्मत्वादिपरिसमाप्ति। अतएव च गन्तॄणा सर्वगतिमता ससारिणां परा प्रकृष्टा गति· "यद्गत्वा न निवर्तन्ते" (गीता ८।२१।१५।६) इति स्मृते।

सस्कृत व्याख्या—अर्थाः विषया इन्द्रियेभ्य. पराः महत्तरा', मन. अर्थेभ्यः परम् महत्तरम्, बुद्धिस्तु मनसोऽपि परा महीयसी, महान् आत्मा तु बुद्धेरपि परः महायान् विद्यते इति।

महतो महत्तत्वाद् अव्यक्तम् (प्रकृति.) प्रधान परम् श्रेष्ठतरम्, अव्यक्ताद् प्रधानादपि पुरुष. (परमात्मा) पर महीयान् विद्यते। पुरुषात्पर परमात्मनः पर महत्तरं किंचिन्नपि नास्ति। इय पराकाष्ठा चरमसीमा इयमेव परा गति. महत्तम गन्तव्यस्थानं भवतीति।

भावार्थ—चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, चर्म नामक इन पाच ज्ञानेन्द्रियो से उनके विषय—रूप, शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श श्रेष्ठ (सूक्ष्म) है। इन विषयो की अपेक्षा मन, मन की अपेक्षा बुद्धि, बुद्धि की अपेक्षा महत् तत्त्व (हिरण्य-गर्भ), हिरण्यगर्भ की अपेक्षा मूल प्रकृति एव मूल प्रकृति से श्रेष्ठ परमात्मा है। परमात्मा से श्रेष्ठ (सूक्ष्म) कुछ भी नही। परमात्मा ही परमगति है। जिसे पा लेने पर साधक को फिर ससार में कभी नहीं आना पडता।

10 The sense–objects are higher than the senses and beyond the objects is the mind, but the intellect is higher than the mind, and the Great Shoul (Atman) is higher than the intellect.

11. The uumanifested is superior to the Great (Atman) and the Purusha (Parmatman) is superior to the unmanifested. There is nothing higher than Purusha He is the culmination That is the end and that is the supreme goal.

एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रयया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥ १२॥

पदच्छेद—एष., सर्वेषु, भूतेषु, गूढात्मा, न, प्रकाशते, दृश्यते, तु, अग्रयया, बुद्धया, सूक्ष्मया, सूक्ष्मदर्शिभि.।

अन्वय.—सर्वेषु भूतेषु गूढः एव आत्मा न प्रकाशते सूक्ष्मदर्शिभिः तु अग्रयया सूक्ष्मया बुद्धया दृश्यते।

[शा०] ननु गतिश्चेदागत्यापि भवितव्यम्। कथ यस्माद् भूयो न जायत इति? नैष दोष, सर्वस्य प्रत्यगात्मत्वादवगतिरेव गतिरित्यु-पचर्यते। प्रत्यगात्मत्वं च दर्शितमिन्द्रियमनोबुद्धिपरत्वेन। यो हि गन्ता सोऽगतमप्रत्यग्रूप गच्छत्यनात्मभूतं न विपर्ययेण। तथा च श्रुतिः—"अन-ध्वगा अध्वसु पारयिष्णवः" इत्याद्या। तथा च दर्शयति प्रत्यगात्मत्वं सर्वस्य–एष पुरुष. सर्वेषु ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तेषु भूतेषु गूढ· सवृत्तो दर्शन-श्रवणादिकर्माविद्यामायाच्छन्नोऽत एवात्मा न प्रकाशत आत्मत्वेन कस्य-

चित् । अहो अतिगम्भीरा दु खगाह्या विचित्रा माया चेय यदयं सर्वो जन्तुः परमार्थत परमार्थ सतत्त्वोऽप्येव बोध्यमानोऽह परमात्मेति न गृह्णात्यनात्मान देहेन्द्रियादिसङ्घातमात्मनो दृश्यमानमपि घटादिवदात्मत्वेनाहममुष्य पुत्र इत्यनुच्चमानापि गृह्णाति । नूनं परस्यैव मायया मोमुह्यमाना. सर्वो लोको बम्भ्रमीति । तथा च स्मरणम् —"नाहं प्रकाश सर्वस्य योगमायासमावृत" (गीता ७।२५) इत्यादि । ननु विरुद्धमिदमुच्यते "मत्वा धीरो न शोचति" (क० उ० २।१।४) "न प्रकाशते" (क० उ० १।३।१२) इति च । नैतदेवम् । असस्कृतबुद्धेरविज्ञेयत्वान्न प्रकाशत इत्युक्तम् । दृश्यते तु सस्कृतया अग्रयया अग्रमिवाग्रया तया, एकाग्रतयोपेतयेत्येतत्, सूक्ष्मया सूक्ष्मवस्तु निरूपणपरया, कै. ? सूक्ष्मदर्शिभि 'इन्द्रियेभ्य परा ह्यर्था' इत्यादिप्रकारेण सूक्ष्मतापारम्पर्यदर्शनेन पर सूक्ष्मं द्रष्टु शील येषा ते सूक्ष्मदर्शिनस्तै सूक्ष्मदर्शिभि पण्डितैरित्येतत् ।

सस्कृत व्याख्या—'प्राणिमात्रेषु गूढ. अन्तर्हितः एष आत्मा सामान्यै पुरुषैः न प्रकाशते न बहिर्दृश्यते । परन्तु सूक्ष्मदर्शिभि. (योगिभि.) सूक्ष्म द्रष्टु शीलं येषा तै अग्र्या श्रेष्ठया सूक्ष्मया बुद्ध्या द्रष्टुं शक्यते । सामान्यजनाना कृते अदृष्टोऽपि आत्मा तत्त्वज्ञै ज्ञायत एवेति भावः ।

भावार्थ—सभी जीवो में छिपा हुआ यह आत्मा सामान्य व्यक्तियो द्वारा दृष्टिगाचर का विषय न होते हुए भी सूक्ष्मदर्शी उसे अपनी पैनी दृष्टि देख लेते है ।

12. This soul is hidden in all beings and this is why He does not appear to all. He is seen only by the seers through their pointed and subtle intellect.

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥१३॥

पदच्छेद—यच्छेत्, वाक् , मनसी, प्राज्ञ , तद्, यच्छेत्, ज्ञान, आत्मनि, ज्ञानम्, आत्मनि, महति, नियच्छेत्, शान्ते, आत्मनि ।

अन्वय —प्राज्ञ वाक् मनसी यच्छेत् तत् मनः ज्ञाने आत्मनि यच्छेत् ज्ञानम् आत्मनि महति नियच्छेत् तत् शान्ते आत्मनि यच्छेत् ।

[शा०] यच्छेन्नियच्छेदुपसहारेत्प्राज्ञो विवेकी, किम् ? वाग्वाचम्। वागत्रोपलक्षणार्था सर्वेषामिन्द्रियाणाम् । क्व ? मनसी । मनसीतिच्छान्दस दैर्घ्यम् तच्च मनो यच्छेज्ज्ञाने प्रकाशस्वरूपे बुद्धौ आत्मनि । बुद्धिर्हि मन-आदि करणान्याप्नोतीत्यात्मा प्रत्यक् तेषाम् । ज्ञान बुद्धिमात्मनि महति प्रथमजे नियच्छेत् । प्रथमजवत् स्वच्छस्वभावकमात्मनो विज्ञानम् आपादयेदित्यर्थ । त च महान्तम् आत्मान यच्छेच्छान्ते सर्वविशेषप्रत्यस्तमित-रूपेऽविक्रिये सर्वान्तरे सर्वबुद्धिप्रत्ययसाक्षिणि मुख्य आत्मनि ।

सस्कृत व्याख्या—निर्विकल्प—सर्याधि गत एवात्मानं द्रष्टु शक्यते। आत्मान द्रष्टुकामे विवेकी प्रथमं वाक्वाणी (वागत्रोपलक्षणार्था सर्वेषामिन्द्रियाणाम्) मनसि यच्छेत् उपसहरेत् (अर्थात् यत्कथयति तस्यैवमननमाचरेत्)। मनश्च ज्ञानरूपे आत्मनि बुद्धौ पर्यवस्येदिति । ज्ञानञ्च महत्तत्त्वे नियच्छेत् । तदनन्तर महत्तत्त्वमपि परमे शान्ते चैतन्यस्वरूपनिर्विकारे आत्मनि एकाग्र-मनसा स्थापयेत् । तदैवायं सूक्ष्म आत्मा द्रष्टु पार्यत इति ।

हिन्दी शब्दार्थ—प्राज्ञ: = विवेकी पुरुष, वाक् = वाणी, मनसि = मन में, यच्छेत् = लय करे, तत् = उस मन को, आत्मनि = अन्त करण मे, ज्ञानम् = अहंभावात्मक ज्ञान को, महति = महत्तत्व मे, नियच्छेत् = लीन करे, शान्ते आत्मनि = परमात्मा मे, यच्छेत् = विलय करे ।

भावार्थ—पुरुष के साक्षात्कार का इच्छुक व्यक्ति उत्तरोत्तर सूक्ष्म मे लीन होते हुए अन्त मे उसी मे लीन होकर उसे पा सकता है । इस लक्ष्य की प्राप्ति में सर्वप्रथम विद्वान् व्यक्ति वाणी को मन मे, मन को ज्ञान रूपी बुद्धि मे, ज्ञान को महान् आत्मा में और फिर इसी क्रम से आत्मा को निर्विकार परमात्मा में लय करे।

13 The wise man should merge the speech into the mind, that mind into the knowledge and than again subdue the knowledge into the great self and that Great Soul into the spirit of peace

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया—
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ १४ ॥

पदच्छेद—उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य, वरान्, निबोधत, क्षुरस्य, धारा, निशिता, दुरत्यया, दुर्गम्, पथ, तत्, कवयः, वदन्ति ।

अन्वयः—उत्तिष्ठत, जाग्रत वरान् प्राप्य (तत्) निबोधत निशिता क्षुरस्य धारा दुरत्यया दुर्गम् तत् पथः (इति) कवय वदन्ति ।

शा०—अनाद्यविद्या प्रसुप्ता उत्तिष्ठत हे जन्तव । आत्मज्ञानाभिमुखा भवत । जाग्रताज्ञाननिद्राया घोररूपाया सर्वानर्थबीजभूताया क्षयं कुरुत । कथम् ? प्राप्योपगम्य वरान् प्रकृष्टानाचार्यास्तद्विदस्तदुपदिष्टं मर्वान्तरमात्मानमहमस्मीति । निबोधतावगच्छत । न ह्युपेक्षितव्यमिति श्रुतिरनुकम्पयन्नाह मातृवत् । अतिसूक्ष्मबुद्धिविषयत्वाज्ज्ञेयस्य । किमिव सूक्ष्मबुद्धिरित्युच्यते । क्षुरस्य धाराग्र निशिता तीक्ष्णीकृता दुरत्यया दुःखेनात्ययो यस्या सा दुरत्यया । यथा सा पद्भ्या दुर्गमनीया तथा दुर्ग दुःखसम्पाद्यमित्येतत् पथः पन्थान तत्त्वज्ञानलक्षणं मार्ग कवयो मेधाविनो वदन्ति । ज्ञेयस्यातिसूक्ष्मत्वात्तद्विषयस्य ज्ञानमार्गस्य दुःखसम्पाद्यत्वं वदन्तीत्यभिप्राय ।

सस्कृत व्याख्या—अरे अनाद्यविद्याप्रसुप्ता जना ! उत्तिष्ठत ससार-मोहं परित्यज्यात्मज्ञानाभिमुखा भवत, जाग्रत स्वप्नकल्पमपहाय आत्मनो विषये जागरूका भवत, वरान् श्रेष्ठान् आचार्यान् प्राप्य आत्मस्वरूप जानीथ, कवयो विद्वाम तत् आत्मज्ञान तीक्ष्णीकृता क्षुरस्य धारा इव दु सम्पाद्यम् वदन्ति ।

हिन्दी शब्दार्थ—उत्तिष्ठत = आलस्य का त्यागकर उठो, जाग्रत = मोह-निद्रा को छोडकर जागो, वरान् = ज्ञानवान पुरुषो को, प्राप्य = प्राप्त करके, निबोधत = उनसे अपने को जानो, कवय = विद्वान् लोग, निशिता=अत्यन्त तेज, दुरत्यया = अत्यन्त कठिन, क्षुरस्य धारा इव = छुरे की धार के समान, दुर्गम् = कष्टसाध्य, वदन्ति = कहते है ।

भावार्थ—(अज्ञानी लोगो) उठो, अज्ञान निद्रा को छोडकर ज्ञानी पुरुषो के पास जाओ और आत्मज्ञान प्राप्त करो । विद्वान् लोग आत्मबोध के इस मार्ग को तीक्ष्ण छुरे की धारा के समान कहते है ।

14 Arise, awake (o man) get the great teachers and know it from them the wise say that path is narrow and difficult to tread on as a razor's edge

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथा रसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

पदच्छेद—अशब्दम्, अस्पर्शम्, अरूपम्, अव्ययम् तथा अरसम्, नित्यम्, अगन्धवत्, च, यत्, अनादि, अनन्तम्, महत , परम्, ध्रुवम्, निचाय्य, तम्, मृत्युमुखात, प्रमुच्यते ।

अन्वय — तम् अशब्दम् अस्पर्शम् अरूपम्, अरसम् अगन्धवत् च अव्ययम्, नित्यम् अनाद्यनन्तम् महतः परम् ध्रुवम् निचाय्य मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ।

[शा०] अशब्दमस्पर्शमरूपमव्यय तथारस नित्यमगन्धवच्च यत् एतद् व्याख्यात ब्रह्माव्ययम्— यद्धि शब्दादिमत्तद् व्येतीद तु अशब्दादिमत्वादव्यय न व्येति न क्षीयते, अत एव च नित्यम् यद्धि व्येति तदनित्यमिद तु न व्येत्यतो नित्यम् । इतश्च नित्यम् अनाद्यविद्यमान आदि कारणम् अस्य तदिदमनादि । यद्ध्यादिमत्तत्कार्यत्वादनित्यं कारणे प्रलीयते यथा पृथिव्यादि । इद तु सर्वकारणत्वादकार्यमकार्यत्वान्नित्यम् । न तस्य कारणमस्ति यस्मिन्प्रलीयेत ।

तथानन्तरम् अविद्यमानोऽन्त कार्यमस्य तदनन्तम् । यथा कदल्यादेः फलादिकार्योत्पादनेन अपि अनित्यत्व दृष्ट न च तथाप्यन्तवत्त्व ब्रह्मण. अतोऽपि नित्यम् ।

महतो महत्तत्वाद् बुद्ध्याख्यात्पर विलक्षण नित्यविज्ञप्तिस्वरूपत्वात्सर्वसाक्षि हि सर्वभूतात्मत्वाद् ब्रह्म । उक्त हि- "एष सर्वेषु भूतेषु" (कठ० उप० १।३।१२) इत्यादि । ध्रुव च कूटस्थ नित्य न पृथिव्यादिवदापेक्षिक नित्यत्वम् । तदेवम्भूत ब्रह्मात्मान निचाय्यावगम्य तमात्मानं मृत्युमुखान्मृत्युगोचरादविद्याकामकर्मलक्षणात्प्रमुच्यते विमुच्यते ।

संस्कृत व्याख्या— यमो नचिकेत प्रबोधयन् प्रतिपादयति—तत् आत्मतत्वं निचाय्य सम्यगधिगम्य पुरुषः (मुमुक्षु) जरामरणादिदुःखात्प्रमुच्यते । कीदृश तत् ब्रह्मेति जिज्ञासमाने तत्राह— अशब्दम्- अस्पर्शम्-अरूपम् अरसम्-अगन्धवच्च ।

(अर्थात्-शब्द स्पर्श-रूप-रस गन्धादि वर्जितम्) अस्ति तथा अव्ययम्-नित्यम्-अनादि-अनन्तम्-ध्रुवम् (अर्थात् क्षयरहितम्-कार्यकारणभावशून्यम्-चिरसत्यम्-एकरूपश्चास्ति ।

भावार्थ—जो (आत्मतत्त्व) शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, नाशरहित, रसादि गुण रहित, (किन्तु) नित्य है और गन्धरहित है। जो अनादि, अनन्त, महत्तत्वादि से परे है और निश्चल है उसी परमतत्त्व को अच्छी तरह से जानने पर ही साधक जरामरणादि दुःखो से मुक्त होता है।

15. whoever, fully understands this soundless, touchless, colourless, tasteless, eternal, without begining and without end, higher than Mahat and ever constant Atman, becomes free from the jaws of death.

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् ।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ॥ १६ ॥
य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्म संसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते
तदानन्त्याय कल्पत इति ॥ १७ ॥

पदच्छेद—नाचिकेतम्, उपाख्यानम्, मृत्यु-प्रोक्तम्, सनातनम्, उक्त्वा, श्रुत्वा, च मेधावी, ब्रह्मलोके, महीयते ।

यः, इमम्, परमम्, गुह्यम्, श्रावयेद्, ब्रह्म, ससदि, प्रयत, श्राद्धकाले, वा, तद्, आनन्त्याय, कल्पते ।

अन्वय—मृत्युप्रोक्तम् नाचिकेतम् सनातनम् उपाख्यानम् उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ।

यः प्रयतः ब्रह्मससदि श्राद्धकाले वा इम परम गुह्य श्रावयेत् तत् आनन्त्याय कल्पते । तत् आनन्त्याय कल्पते इति ।

[शा०] प्रस्तुतविज्ञानस्तुत्यर्थमाह श्रुति—नाचिकेत नचिकेतसा प्राप्तं नाचिकेत मृत्युना प्रोक्तं मृत्युप्रोक्तमिदमाख्यानमुपाख्यान वल्लीत्रय-लक्षण सनातन चिरन्तनं वैदिकत्वादुक्त्वा ब्राह्मणेभ्य श्रुत्वाचार्येभ्यो

मेधावी ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोकस्तस्मिन्महीयत आत्मभूत उपास्यो भवतीत्यर्थ ।

य कश्चिदिम ग्रन्थ परम प्रकृष्ट गुह्य गोप्य श्रावयेद् ग्रन्थतोऽर्थतश्च ब्राह्मणाना ससदि ब्रह्मससदि प्रयत शुचिर्भूत्वा श्राद्ध काले वा श्रावयेद् भुञ्जानाना तच्छ्राद्धमस्यानन्त्यायानन्तफलाय कल्पते सम्पद्यते । द्विर्वचनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम् ।

संस्कृत व्याख्या—अन्ते कठोपनिषद्ग्रन्थस्य माहात्म्य प्रकटयन्नाह—मृत्युना यमेन प्रतिपादितम् नाचिकेतसा प्राप्तमिद सनातन प्राचीन आख्यानकल्पम् कथ कथयित्वा आकर्ण्य च मेधासम्पन्नः पुरुष ब्रह्मलोके महीयते महिमाशाली जायते ।

य कश्चिदपि पवित्रो भूत्वा अत्यन्तं रहस्यमिमं (यम-नाचिकेतस-सम्बन्धिनमुपाख्यानम्) विद्वत्सभाया श्राद्धकाले वा शृणोति श्रावयति च सः आनन्त्याय मोक्षाय कल्पते समर्थो भवति अथवा अनन्त फलाय उपास्यो भवति ।

हिन्दी शब्दार्थ—मृत्युना-प्रोक्तम् = यम द्वारा उपदिष्ट, नाचिकेतम् = नचिकेता द्वारा सुने गये, सनातनम् = चिरन्तन, उपाख्यानम् = उपदेश कथा, मेधावी = विद्वान्, उक्त्वा = कहकर, श्रुत्वा = सुनकर, ब्रह्मलोके = ब्रह्मलोक मे, महीयते = आदर प्राप्त करता है ।

प्रयत: = जितेन्द्रिय, परम–गुह्य = परम गोपनीय, ब्रह्म ससदि=ब्रह्मवेत्ताओ में, श्राद्धकाले = जिज्ञासुओ मे, श्रावयेत् = सुनाता है, तद् = वह विद्वान् पुरुष, अनन्त्याय = ब्रह्मप्राप्ति के लिए, कल्पते = समर्थ होता है ।

भावार्थ—भगवान् यम द्वारा प्रतिपादित इस नाचिकेता सम्बन्धी कथानक को कहने और सुनने वाला ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। जो कोई भी (स्त्री-पुरुष) इस पवित्र आख्यान को शुद्ध होकर श्रद्धावान् साधारण लोगो को या विद्वत्समाज को सुनाता है उसे अनन्त (मोक्ष) फल की प्राप्ति होती है ।

16–17. If any one, becoming purified says and hears the eternal tale in the assembly of Brahmans or at the time of Shraddha said by Death to Nachiketa, is adored in the world of Brahman

प्रथमाध्याये तृतीय वल्ली समाप्त

(प्रथम अध्याय समाप्त)

द्वितीय अध्याय

प्रथम वल्ली

प्रथमाऽध्याये आत्मपरमात्मनोः स्वरूपं तत्प्राप्त्युपायश्च प्रतिपादितम्, अधुना तद् बाधकानि बहिर्मुखसाधनानि सर्वाणीन्द्रियाणि विघ्नकराणि, तानि प्रदर्श्य, आत्मप्राप्तौ विघ्नान्येव ज्ञातव्यानि, ज्ञात्वैव तदुपायसाधनानि भवन्ति, इत्यादी-न्याह–पराञ्चिखानीति—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ।

पदच्छेद—पराञ्चि, खानि, व्यतृणत्, स्वयम्भू, तस्मात्, परान्, पश्यति, न अन्तरात्मन् कश्चिद्, धीर, प्रत्यक्, आत्मानम्, ऐच्छत्, आवृत्तचक्षु अमृतत्वम्, इच्छन् ॥ १ ॥

अन्वय—स्वयभू खानि पराञ्चि व्यतृणत् । तस्मात् पराङ् पश्यति, अन्तरात्मन् न (पश्यति) । कश्चिद् धीर. अमृतत्वम् इच्छन् आवृत्तचक्षु प्रत्यगात्मानम् ऐक्षत् ।

शा० भा०—एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या, इत्युक्तम् । क पुन प्रतिबन्धोऽग्र्याया बुद्धेर्येन तदभावादात्मा न दृश्यत इति तददर्शनकारणप्रदर्शनार्था वल्ल्यारभ्यते । विज्ञाते ही श्रेय-प्रतिबन्धकारणे तदपनयनाय यत्न आरब्धु शक्यते नान्यथेति । पराञ्चि पराग्चन्ति गच्छन्तीति खानि तदुपलक्षितानि श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि खानी-त्युच्यन्ते । तानि पराञ्च्येव शब्दादिविषयप्रकाशनाय प्रवर्तन्ते । यस्मादेवं स्वाभाविकानि तानि व्यतृणद्धिंसितवान्हनन कृतवानित्यर्थ । कोऽसौ? स्वयंभू परमेश्वर स्वयमेव स्वतन्त्रो भवति सर्वदा न परतन्त्र इति । तस्मात्पराङ्पराग्रूपाननात्मभूताञ्शब्दादीन् पश्यत्युपलभत उपलब्धा, नान्तरात्मन्नान्तरात्मानमित्यर्थ एव स्वभावेऽपि सति लोकस्य कश्चि-न्नद्या प्रतिस्रोत प्रवर्तनमिव धीरो धीमान्विवेकी प्रत्यगात्मान प्रत्यक्चा-

सावात्मा चेति प्रत्यगात्मा। प्रतीच्येवात्मशब्दो रूढो लोके नान्यस्मिन्। व्युत्पत्तिपक्षेऽपि तत्रैवात्मशब्दो वर्तते। 'यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह। यच्चास्य संततो भावस्तस्मादात्मेति कीर्त्यते।' इत्यात्म-शब्दव्युत्पत्तिस्मरणात्। तं प्रत्यगात्मानं स्व स्वभावमैक्षदपश्यत्पश्यतीत्यर्थः, छन्दसि कालानियमात्। कथं पश्यतीत्युच्यते। आवृत्तचक्षुरावृत्तं व्यावृत्तं चक्षुः श्रोत्रादिकमिन्द्रियजातमशेषविषयाद्यस्य स आवृत्तचक्षुः स एवं सस्कृतः प्रत्यगात्मानं पश्यति। न हि बाह्यविषयालोचनपरत्वं प्रत्यगा-त्मेक्षणं चैकस्य संभवति। किमर्थं पुनरित्थं महता प्रयासेन स्वभावप्रवृत्ति-निरोधं कृत्वा धीरः प्रत्यगात्मानं पश्यति इत्युच्यते, अमृतत्वममरणधर्मत्वं नित्यस्वभावतामिच्छन्नात्मन इत्यर्थः।

संस्कृत व्याख्या—स्वयम्भूः स्वकर्मतन्त्र ईश्वर खानि इन्द्रियाणि पराञ्चि-परान् विषयार्थान् शब्दस्पर्शादीन् अञ्चति-प्रकाशति-पराञ्चि-परप्रकाशकानि भवन्ति तत्र हेतुं कथयन्शोचति, आत्मा यत् स्वयम्भूः तानि व्यतृणत्-हिंसितवान्-तृह्हिंसायाम् इति धात्वर्थत्वात्-यद्वा धातूनामनेकार्थत्वात्-तानि-तादृशस्वरूपाणि सृष्टवान् इत्यर्थ तस्मात् परान्-विषयानेव पश्यन्ति-पश्यन्ति अन्तरात्मन्-अन्तरा-त्मानं न- पश्यन्तीत्यर्थः। कश्चिद्धीरः—शब्दादि विषयानासक्तचितः (प्रत्यक्-स्वात्मानमेवैच्छन्-पश्यति छान्दसत्वात् वर्त्तमानकाले; लङ्लकारपरस्मैपद-प्रयोगश्च) आवृत्तचक्षु स्वस्वविषयव्यावृतेन्द्रियः, अत्रचक्षुः शब्द इन्द्रियमात्रपरः, अमृतत्वम्-मोक्षरूपमनुत्तमं पदार्थमिच्छन्-मुमुक्षुरित्यर्थः)

हिन्दी शब्दार्थ—स्वयम्भूः = परमेश्वर ने। खानि = इन्द्रियो को। पराञ्चि = बहिर्मुख। व्यतृणत् = बनाया है। तस्मात् = इसीलिए। पराङ् = बाह्य विषयो को। पश्यति = देखता है। अन्तरात्मन् = अन्दर के आत्मा को। कश्चित् = कोई। अमृतत्वम् = अमृतत्व अर्थात् मोक्ष को। इच्छन्=चाहता हुआ। आवृत्तचक्षु = चक्षुरादि इन्द्रियों को विषयो से हटाकर। प्रत्यगात्मानम् = अन्तर्यामी ब्रह्म के स्वरूप को। ऐक्षत् = देखता है।

भावार्थ—परमेश्वर ने इन्द्रियो को बहिर्मुख बनाया है। इसी लिए (प्राणी) बाह्य विषयो को ही देखता है अर्थात् बाह्य विषयो में ही प्रवृत्त होता है, अन्दर की आत्मा को नही देखता। कोई धीर पुरुष मोक्ष को चाहते हुए बाह्य विषयों से इन्द्रियो को हटाकर अन्तर्यामी ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार करता है।

1. The self-existent creator has created the senses in such way that they go outward and not inward Therefore one sees the external and not the inner-self. Only some judicious having desire for immortality turns his eyes inward and sees the internal Self.

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥२॥

पदच्छेद—पराच कामान्, अनुयन्ति, वाला, ते मृत्योः यन्ति, विततस्य, पाशम्, अथ, धीराः, अमृतत्वम् विदित्वा, ध्रुवम्, अध्रुवेषु, इह, न प्रार्थयन्ते ॥२॥

अन्वय—बाला पराचः कामान् अनुयन्ति । ते विततस्य मृत्योः पाशम् यन्ति । अथ धीरा ध्रुवम् अमृतत्व विदित्वा (अथवा अमृतत्वं ध्रुव विदित्वा) इह अध्रुवेषु न प्रार्थयन्ते ।

शा० भा०—पराचो बहिर्गतानेव कामान्काम्यान्विषयाननुयन्ति अनुगच्छन्ति वालो अल्पप्रज्ञास्ते तेन कारणेन मृत्योरविद्याकामकर्मसमुदायस्य यन्ति गच्छन्ति विततस्य विस्तीर्णस्य सर्वतो व्याप्तस्य पाश पाश्यते बध्यते येन त पाश देहेन्द्रियादिसयोगवियोगलक्षणम् ! अनवरतजन्ममरणजरारोगाद्यनेकानर्थव्रात प्रतिपद्यन्त इत्यर्थ । यत एवमथ तस्माद्धीरा विवेकिन प्रत्यगात्मस्वरूपावस्थानलक्षणममृतत्व ध्रुव विदित्वा, देवाद्यमृतत्व ह्यध्रुवमिद तु प्रत्यगात्मस्वरूपावस्थानलक्षण 'न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्' (वृह० ४।४।२३) इति ध्रुवम् । तदेवभूत कूटस्थमविचाल्यममृतत्व विदित्वाध्रुवेपु सर्वपदार्थेष्वनित्येपु निर्धार्य ब्राह्मणा इह मसारेऽनर्थप्राये न प्रार्थयन्ते किंचिदपि प्रत्यगात्मदर्शनप्रतिकूलत्वात् । पुत्रवित्तलोकैषणाभ्यो व्युत्तिष्ठन्त्येवेत्यर्थ ॥

सस्कृत व्याख्या—बाला अल्पप्रज्ञा पराच—बाह्यान् विषयान् कामान्-काम्यमानान् एव अनुयन्ति-अनुमन्यन्ते ते विततस्य-विस्तीर्णस्य मृत्यो-संसारस्य यद्वा यमराजस्य पाश बन्धन यान्ति प्राप्नुवन्ति । अथायं शब्दः प्रकृत विषयार्थान्तरं परिगृह्णाति एव ज्ञात्वा धीरा-बुद्धिमन्त प्रत्यागात्मनेवध्रुवं-विनिश्चलम्-शाश्वतमितियावत् अमृतत्व—परं श्रेयो विदित्वा अध्रुवेषु-पदार्थेषु इह ससारमण्डले कमपि न प्रार्थयन्ते, आत्मतत्वज्ञस्य लौकिक सर्वं त्याज्यमिति भाव ॥२॥

हिन्दी शब्दार्थ—बाला = मूढ अर्थात् अविवेकी जन। पराचः = बाह्य। कामान् = विषय अर्थात् सुख के भौतिक साधन। अनुयन्ति = अनुसरण करते है। ते = वे। विततस्य = विस्तृत अर्थात् बहुकालव्यापी। मृत्यो. = मृत्यु के। पाशम् = बन्धन को। यन्ति = प्राप्त होते हैं। अथ = और इह = लोक मे। धीरा = विद्वान्। अमृतत्वम् = मोक्ष को। ध्रुवम्=नित्य, स्थायी अनिश्चित रूप से। विदित्वा = जानकर। अध्रुवेषु=नश्वर सासारिक विषयो मे। न प्रार्थयन्ते = आनन्द को प्राप्त करने की इच्छा नही करते।

भावार्थ—अज्ञानी पुरुष बाह्य (भौतिक) विषयो का अनुसरण करते है अर्थात् सासारिक विषयो को प्राप्त करने में लगे रहते है। वे बहुकालव्यापी मृत्यु के बन्धन को प्राप्त होते है अर्थात् जन्म-मरण के जाल मे फसे रहते है। विद्वान् लोग मोक्ष को नित्य या निश्चित रूप से जानकर भौतिक विषयों की इच्छा नही रखते।

2. The unintelligent people hanker after the worldly pleasures and get entangled in the snare of death wide-spread Therefore the prudents understanding the immortality permanent and steady do not have a desire for any mortal of the world

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान्।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत् ॥३॥

पदच्छेद—येन, रूपम्, रसम्, गन्धम्, शब्दान्, स्पर्शान् च, मैथुनान्। एतेन, एव, विजानाति, किम्, अत्र परिशिष्यते ॥ एतद्वै तत् ॥ ३ ॥

अन्वय—येन एतेन एव रूप रस गन्ध शब्दान् स्पर्शान् च मैथुनान् विजानाति। अत्र किम् परिशिष्यते ? एतत् वै तत्।

शा० भा०—येन विज्ञानस्वभावेनात्मना रूप रस गन्ध शब्दान् स्पर्शाश्च मैथुनान्मैथुननिमित्तान्सुखप्रत्ययान्विजानाति विस्पष्ट जानाति सर्वो लोक। ननु नैवप्रसिद्धिर्लोकस्य आत्मना देहादिविलक्षणेनाह विजानामीति। देहादिसघातोऽह विजानामीति तु सर्वो लाकोऽवगच्छति। न त्वेवम्। देहादिसघातस्यापि शब्दादिस्वरूपत्वाविशेषाद्विज्ञेयत्वाविशेषाच्च न युक्त विज्ञातृत्वम्। यदि हि देहादिसघातो रूपाद्यात्मक सन्रूपादी-

न्विजानीयाद्वाह्या अपि रूपादयोऽन्योन्य स्व स्व रूप च विजानीयु । न चैतदस्ति, तस्माद्देहादिलक्षणाञ्च रूपादीनेतेनैव देहादिव्यतिरिक्तेनैव विज्ञानस्वभावेनात्मना विजानति लोक । यथा येन लोहो दहति सोऽग्निरिति तद्वत् । आत्मनोऽविज्ञेय किमत्रास्मिॅंल्लोके परिशिष्यते न किंचित्परिशिष्यते । सर्वमेव त्वात्मना विज्ञेयम् । यस्यात्मनोऽविज्ञेय न किंचित्परिशिष्यते स आत्मा सर्वज्ञ । एतद्वै तत् । कि तद्यन्नचिकेतसा पृष्टं देवादिभिरपि विचिकित्सित धर्मादिभ्योऽन्यद्विष्णो परम पद यस्मात्परं नास्ति तद्वा एतदधिगतमित्यर्थ ॥

संस्कृत व्याख्या—यदा येन साधनेन अर्थात् सर्वप्रकाशके सर्वभासात्मनैव (तद्देवा ज्योतिषा ज्योतिः) इत्युक्त प्रकारेण स एव सर्व प्रकाशकत्वात् रूपम्, रस, गन्ध, शब्दान्, स्पर्शान्, मैथुनान्-मैथुनजन्यसुखविशेषान् नि शेषमेतेनैव कारणेन विजानाति, तदा तस्य किम्-किमपि अत्र-ससारे परिशिष्यते न किमपि इत्यर्थः । एतद् वै तत् तत् ।

हिन्दी शब्दार्थ— येन = जिससे अर्थात् जिसके फलस्वरूप । एतेन एव = इसीसे अर्थात् आत्मा के विद्यमान रहने पर ही रूप . मैथुम रूप--रस आदि वषयों को । विजानाति = जानता है । अत्र = यहाँ । किम् = क्या । परिशिष्यते = शेष रह जाता है अर्थात मरने के बाद प्राणी के लिए यहाँ कुछ भी शेष नही रह जाता । एतत् = यह । वै = निश्चित रूप से तत् = वही (है)

भावार्थ— परिणामत. इस आत्मा के विद्यमान रहने पर ही (प्राणी) रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श और मैथुन को जान पाता है । (इसके न रहने पर अर्थात् मर जाने पर) यहाँ शेष ही क्या रह जाता है ? यह वही है । अर्थात् जिस तत्त्व के विषय मे तुमने प्रश्न किया था यह वही (आत्मा) है ।

3. In this world nothing remains unknown to this self through which the very self people know, colour, taste, smell, sounds and sexual enjoyments. This is that (Soul wanted to know by Nachiketa).

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥४॥

पदच्छेद—स्वप्नान्तं, जागरितान्तम्, च, उभौ, येन, अनुपश्यति। महान्तम् विमुम् आत्मानम्, मत्वा, धीरः न शोचति।

अन्वय—येन स्वप्नान्तं जागरितान्त च उभौ अनुपश्यति (तम्) महान्तं विभुम् आत्मनं मत्वा धीर न शोचति।

शा० भा०—स्वप्नान्त स्वप्नमध्य स्वप्नविज्ञेयमित्यर्थः। तथा जागरितान्त जागरितमध्य जागरितविज्ञेय च; उभौ स्वप्नजागरितान्तौ येनात्मनानुपश्यति लोक इति सर्व पूर्ववत्। त महान्त विभुमात्मानं मत्वावगम्यात्मभावेन साक्षादहमस्मि परमात्मेति धीरो न शोचति ॥ ४ ॥

संस्कृत व्याख्या—स्वप्नान्तम्-सकलं स्वप्नप्रपञ्चम्, जागरितान्त जाग्रत्प्रपञ्चं चोभौ येन साक्षीभावापन्नेन येन परमात्मना लोकोऽयं सर्वावस्थापन्नं पश्यति त महान्तमविभुम् व्यापकमात्मानम् मत्वा सम्यग्विदित्वा धीरो न शोचति नानुतप्यति इति भावः।

हिन्दी शब्दार्थ—स्वप्नान्तम्—स्वप्नावस्था मे ज्ञात होने वाले। जागरितान्तम् = जाग्रनावस्था मे ज्ञात होनेवाले। उभौ = दोनो प्रकार के विषयो को। येन = जिस आत्मा के द्वारा। अनुपश्यति=देखता है। महान्तम्=महान्। विभुम्= सर्वव्यापक। आत्मानम् = आत्मा को। मत्वा = जानकर। न शोचति = शोक नही करता है अर्थात् कभी शोक को प्राप्त नही होता।

भावार्थ—जिस आत्मा के द्वारा स्वप्न तथा जाग्रत अवस्था के ज्ञात होने वाले सभी विषयो को (प्राणी) जान पाता है उस महान् सर्वव्यापक आत्मा को जानकर बुद्धिमान पुरुष कभी शोक को प्राप्त नही होता।

4 Having understood fully that great and universal self through which one knows the objects in both the states of dreaming and waking the wise does not grieve.

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत् ॥५॥

पदच्छेद—य, इदम, मध्वदम्, वेद, आत्मानम्, जीवम्, अन्तिकम्, ईशानः, भूतभव्यस्य, न ततः विजुगुप्सते ॥ एतवद्, वै, तत् ॥ ५ ॥

अन्वय—यः इम मध्वद जीवम् आत्मानम् अन्तिकात् भूतभव्यस्य ईशानं वेद (स) तत. न विजुगुप्सते । एतत् वै तत् ।

शा० भा०—य कश्चिदिम मध्यवद कर्मफलभुज जीव प्राणादिकलापस्य धारयितारमात्मान वेद विजानात्यन्तिकादन्तिके समीप ईशानमीशितार भूतभव्यस्य कालत्रयस्य ततस्तद्विज्ञानादूर्ध्वमात्मान न विजुगुप्सते न गोपायितुमिच्छत्यभय प्राप्तत्वात् । यावद्धि भयमध्यस्थोऽनित्यमात्मान मन्यते तावद्गोपायितुमिच्छत्यात्मानम् । यदा तु नित्यमद्वैतमात्मान विजानाति तदा कि क कुतो वा गोपायितुमिच्छेत् । एतद्वै तदिति पूर्ववत् ॥ ५ ॥

सस्कृत व्याख्या—यः इदम् इमम् (छान्दसलिङ्गव्यत्ययः) मध्वदम्-मधुम्-अत्तीति तम्-मध्वदम्–कर्मफलभोक्तारम् जीवात्मानम्, अन्तिकात्–निकटे वर्तमानात् (गुहा प्रविष्टौ इत्युक्तत्वात् श्रुतिप्रमाणात् जीवपरमात्मानौ सहैव सन्तौ अन्तःप्रविष्टौ) अतएव भूतभव्यस्य–कालत्रयवर्तितया ईशानश्च एव च फलभोग्यत्वेन विषयाः उचित् पदार्था. जीवात्मा ईशानश्चेति चिदचिदीश्वरन् यो वद पृथक्तया जानाति ततो तन विजुगुप्सते न निन्देत् (जुगुप्साविरामादि सूत्रेण पञ्चमो विधानम् ॥ ५ ॥

हिन्दी शब्दार्थ—अः = जो (व्यक्ति) । इमम् = इस । मध्वदम् = कर्म फल के भोक्ता । जीवम् = जीवात्मा को । भूतभव्यस्य = अतीत एव भविष्यत् के । ईशानम् = स्वामी । आत्मानम् = परमात्मा को । अन्तिकात = समीप से । वेद = जानता है । तत. = उस ज्ञान से । न जुगुप्सते = निन्दा को प्राप्त नही होता । एतत् वैतत् = यही वह परमात्मतत्व है ।

भावार्थ—जो व्यक्ति इस कर्मफलभोक्ता जीवात्मा को (ही) भूत और भविष्यत् का स्वामी परमात्मा (ऐसा) समीप से जानता है वह निन्दा को प्राप्त नही होता । अर्थात् यह कर्मफल का भोक्ता जीवात्मा ही वह परमात्मा है जो भूत और भविष्यत् का शासन करता है । इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा दोनो ही तादात्म्य की स्थिति में है । इस तथ्य को निकट से जानने वाला व्यक्ति कभी निन्दा को प्राप्त नही होता ।

5. The man who knows this Self-the consumer of the fruits of works, the sustaining of life and the lord of the

past aud future is present in himself, has no fear at all. This is that.

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत। एतद्वैतत् ॥६॥

पदच्छेद—यः, पूर्वम्, तपसः जातम्, अद्भ्य, पूर्वम्, अजायत, गुहाम्, प्रविश्य तिष्ठन्तम्, य भूतेभ्यः, व्यपश्यत ॥ एतद्वै, तत् ॥

अन्वय – यः पूर्वं तपसः जातम् अद्भ्यः पूर्वम् अजायत, गुहा प्रविश्य भूतेभिः तिष्ठन्तं य. व्यपश्यत। एतत् वै तत्।

शा० भा०—य कश्चिन्मुमुक्षु पूर्वं प्रथम तपसो ज्ञानादिलक्षणाद्ब्रह्मण इत्येतज्जातमुत्पन्न हिरण्यगर्भम्, किमपेक्ष्य पूर्वमित्याह–अद्भ्य. पूर्वमप्सहितेभ्य पञ्चभूतेभ्यो न केवलाभ्योऽद्भ्य इत्यभिप्राय। अजायत उत्पन्नो यस्त प्रथमज देवादिशरीराण्युत्पाद्य सर्वप्राणिगुहा हृदयाकाश प्रविश्य तिष्ठन्त शब्दादीनुपलभमान भूमिर्भूतै कार्यकरणलक्षणै सह तिष्ठन्त यो व्यपश्यत य पश्यतीत्येतत्। य एव पश्यति स एतदेव पश्यति यत्तत्प्रकृत ब्रह्म ॥

सस्कृत व्याख्या—अद्भ्य —(अप एव ससर्जाऽऽदौ तासु वीर्यमवासृजत्) इत्यादिमन्त्रोक्तप्रकारेण अस्याः, व्यष्टिसृष्टे. पूर्वं अप एव सृष्टवान् ततोऽपि पूर्वं योऽजायत तपस —सकल्पादेव पूर्वं जातम् गुहा प्रविश्य तिष्ठन्तम्—(हिरण्यगर्भं-पश्यत जायमानम् इति स्मृत्युक्तरीत्या प्रथम जातं गुहा प्रविश्य हृदयगुहा प्रविश्य वर्तमानम् यः, भूतेभि —भूतै. (विभक्तिव्यत्येन ऐसादेशाभाव.) देहेन्द्रियान्तःकरणादिभिरुपेतम् चतुर्मुखमयम् सकलजगत् सृष्टवान् व्यपश्यत-कटाक्षेणैक्षत। एतद्वैतत्–एवं मन्त्रार्थप्रकारेण त जानीहि।

हिन्दी शब्दार्थ—यः = जो। तपस = इस चराचर विश्व से। पूर्वम् = पहले ही। अजायत = उत्पन्न हो चुका था अर्थात् विद्यमान था। (जो) अद्भ्य. = जल से। पूर्वम् = पहले ही। अजायत = उत्पन्न हुआ अर्थात् विद्यमान था। यः = जो (मोक्षकामी)। गुहाम् = हृदयरूपी गुफा मे। प्रविश्य = प्रवेश करके। भूतेभिः = सभी प्राणियो के साथ। तिष्ठन्तम् = स्थित। व्यपश्यत = देखता है। एतद्वै तत् = वही वह है।

भावार्थ—जो इस चराचर विश्व से पहले ही विद्यमान था। जो जल से पहले ही विद्यमान था। (उसे) जो मोक्ष की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति सभी प्राणियो की हृदयरूपी गुफा में सभी प्राणियो के साथ स्थित देखता है (वह निन्दा को प्राप्त नही होता)। यही वह परमात्मतत्व है।

6 He sees indeed, that Brahman who sees the Hiranya-garbha born before the five elements hidden in the heart in the midst of body and organs after entering.

या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत। एतद्वै तत्॥७॥

पदच्छेद—या, प्राणेन, सम्भवति, अदिति, देवतामयी, गुहाम्, प्रविश्य, तिष्ठन्ती, या, भूतेभ्य, व्यजायत ॥ एतद वै, तत् ॥ ७ ॥

अन्वय—या देवतामयी अदिति प्राणेन सभवति ...... ।

शा० भा०—या सर्वदेवतामयी सर्वदेवतात्मिका प्राणेन हिरण्यगर्भरूपेण परस्माद्ब्रह्मण सभवति शब्दादीनामदनाददितिस्ता पूर्ववद्गुहा प्रविश्य तिष्ठन्तीम्। तामेव विशिनष्टि—या भूतेभि भूतै समन्विता व्यजायत उत्पन्ना इत्येतत् ॥

सस्कृत व्याख्या—अदिति—कर्मफलानि अत्तीति, अदिति जीव उच्यते या प्राणेन सह सम्भवति वर्तते देवतामयी-इन्द्रियाधीनभोगो यस्याः तत्स्वरूपा गुहा प्रविश्य तिष्ठन्ती-हृदयपुण्डरीककुहरवर्तिनी सती, भूतेभिर्व्यजायत-पृथिव्यादिभिर्भूतै सहिता देवतामनुष्यादिनानारूपेण अजायत इत्यर्थ. अस्य मन्त्रस्य शाकरभाष्ये अन्य प्रकारेण व्याख्यातम् तत् प्रकृतिप्रसगविरुद्धम्। एतद्वैतत्—उक्तोऽर्थ।

हिन्दी शब्दार्थ—देवतामयी = प्रकाशयुक्त । अदिति = अज्ञान की विनाशिका। या = जो बुद्धि। प्राणेन = प्राण से। सम्भवति = उत्पन्न होती है। या = जो बुद्धि। तिष्ठन्तीम् = स्थित रहती हुई। गुहा प्रविश्य = हृदयरूपी गुफा में प्रवेश करके भूतेभि = प्राणियो के साथ। व्यजायत = प्रगट होती है। एतत् वै तत् = यही वह सूक्ष्म बुद्धि है।

भावार्थ—अज्ञान को नष्ट करनेवाली प्रकाशमयी जो बुद्धि प्राण से उत्पन्न होती है और सभी प्रणियो की हृदयरूपी गुफा मे प्रणियो के साथ स्थित दिखायी देती है यही वह सूक्ष्म बुद्धि है (जिसके द्वारा परमात्मतत्त्व जाना जा सकता है)।

7 He, who sees that Goddess Aditi containing all the duties, who, has come into existance, who has born from elements and who lives in the heart after entering, sees surely that very Brahman.

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवे दिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वै तत् ।८।

पदच्छेद—अरण्योः, निहित. जातवेदा, गर्भः, इव, सुभृत, गर्भिणीभि । दिवेदिवे, ईड्य जागृवद्भि, हविष्मद्भिः मनुष्येभि अग्नि ॥ एतद्वैतत् ॥ ८ ॥

अन्वय—गर्भिणीभि सुभृत गर्भ इव अरण्योः निहित जातवेदा अग्निः जागृवद्भि हविष्मद्भि मनुयेभि. दिवे दिवे ईड्य । एतत् वै तत् ।

शा० भा०—योऽधियज्ञ उत्तराधरारण्योर्निहित स्थितो जातवेदा अग्नि पुन सर्वहविषा भोक्ताध्यात्म च योगिभिर्गर्भ इव गर्भिणीभिरन्तर्वत्नीभिरगर्हितान्नपानभोजनादिना यथा गर्भ. सुभृत सुष्ठु सम्यग्भृतो लोक लोक इवेत्थमेवर्त्विग्भिर्योगिभिश्च इत्येत । किंच दिवे दिवेऽहन्यहनीड्य. स्तुत्यो वन्द्यश्च कर्मिभिर्योगिभिश्चाध्वरे हृदये च जागृवद्भिर्जागरणशालवद्भिरप्रमत्तैरित्येतत्, हविष्मद्भिराज्यादिमद्भिर्ध्यानभावनावद्भिश्च मनुष्येभिर्मनुष्यैरग्निरेतद्वै तत्तदेव प्रकृतं ब्रह्म ॥

संस्कृत व्याख्या—अरण्यो.—उत्तराधरारण्यो निहितः—स्थितो जातवेदा अग्निः गर्भिणोभि. पानभोजनादिना सुभृतः—सम्यक् पोषितो गर्भ इव, दिवे दिवे अहन्यहनि जागृवद्भिः—जागरणशीलैः अप्रमत्तै प्रवुद्धधीभिः, ईड्य—स्तुत्य.—हविष्मद्भिः—आज्यादिहवि प्रदानप्रवृत्तैः, ऋत्विग्भिः मनुष्यैरपिस्तुत्यः स अग्निः, एवद् वै तत्—अग्निस्वरूप पूर्वोक्तब्रह्मात्मकम् तत्, इत्यर्थ ॥ ८ ॥

हिन्दी शब्दार्थ—गर्भः इव = गर्भ के समान । अरण्यो = दो अरणियो के बीच मे । निहित = विद्यमान । जातवेदाः = अग्नि । अग्निः = परमात्मा । जागृवद्भि॰ = जागरणशील योगियो के द्वारा । हविष्मद्भि मनुष्येभि = यज्ञादि करनेवाले मनुष्यो के द्वारा । दिवे दिवे = प्रति दिन । ईड्य = स्तुति करने के योग्य है ।

भावार्थ—जिस प्रकार गर्भाशय मे गर्भ विद्यमान रहता है और अरणियो में आग छिपी रहती है उसी तरह अन्त॰करण मे परमात्मा विद्यमान रहता है। वह परमात्मा योगाभ्यास आदि के प्रयत्न मे उसी तरह प्रत्यक्ष होता है जैसे अरणियो के घर्षण से आग प्रगट होती है । इसीलिए गर्भिणी स्त्री जैसे गर्भ के धारण-पोषण का प्रतिदिन यत्न करती रहती है उसी तरह ज्ञानी पुरुषो को चाहिए कि अपने अन्तःकरण मे स्थित परमात्मा की एकाग्र मन से सदैव स्तुति किया करें ।

8 The omniscient fire-that is lodged in ths two fire-sticks, that is well presented like the faetuses by the pregnant women and that is worshiped every day by the cautious men with religious offering—is only that Brahman.

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।
तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन । एत तद्वैत् ॥९॥

पदच्छेद—यतः, च, उदेति, सूर्यः,अस्तम्, यत्र, च गच्छति, तं, देवाः सर्वे, अर्पिता , तद्, उ, न, अत्येति, कश्चन त, एतद् वै, तत् ॥ ९ ॥

अन्वय—यत च सूर्य. उदेति यत्र च अस्त गच्छति, त सर्वे देवः अर्पिता. । दद् उ कश्चन न अत्येति । एतद् वैतत् ।

[शा०] यतश्च यस्मात्प्राणादुदेति उत्तिष्ठति सूर्योऽस्त निम्लोचनं यत्र यस्मिन्नेव च प्राणेऽहन्यहनि गच्छति त प्राणमात्मानं देवा अग्न्यादयोऽधिदैव वागादयश्चाध्यात्म सर्वे विश्वेऽरा इव रथनाभावर्पिता. संप्रवेशिता स्थितिकाले सोऽपि ब्रह्मैव । तदेतत् सर्वात्मक ब्रह्म । तदु नात्येति नातीत्य तदात्मकता तदन्यत्वं गच्छति कश्न कश्चिदपि । एतद्वैतत् ॥

संस्कृत व्याख्या—यत.—यस्मात् ब्रह्मण सकाशात् सूर्य उदेति यत्र च अस्तम् गच्छति लयं गच्छति सर्वे देवा॰ तमेव—तस्मिन्नेवात्मनि अर्पिता.—प्रतिष्ठिताः

सन्ति तत्-सर्वात्मक ब्रह्म उ-इति वितर्के कश्चन-कोऽपि न अत्येति-नातिक्राम्यति अर्थात् छायावद् अन्तर्यामिणो दुर्लङ्घ्यत्वादितिभावः। एतद्वैतत्-उक्तोऽर्थः

हिन्दी शब्दार्थ—यत = जिससे। उदेति = उदित होता है। यत्र = जिसमे। अस्त गच्छति = डूब जाता है। तम् = उस (परमात्मा) मे। सर्वे देवा अर्पिता. = सभी देवता प्रविष्ट रहा करते है। तत् = उसका। उ = निश्चय करके। कश्चन = कोई भी अत्येति = अतिक्रमण नही कर सकता।

भावार्थ – जिससे सूर्य उगता और वह जिसमे डूबता है उसी मे सभी देवता प्रविष्ट होकर रहा करते है। निश्चय ही उसका कोई भी व्यक्ति अतिक्रमण नही कर सकता।

9 That from which the sun rises and in which it sets again and into which all the gods are merged. None is apart from that–This is surely that

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥ १०॥

पदच्छेद—यद्, एव, इह, तद्, अमुत्र, तद्, नु, इह। मृत्योः सः मृत्युम्, एव, आप्नोति, यः, इव, नाना, इव, पश्यति॥ १०॥

अन्वय—यद् इह तद् अमुत्र, यद् अमुत्र तद् अनु इह। य इह नाना इव पश्यति स. मृत्यो मृत्युम् आप्नोति।

[शां] यदेवेह कार्यकरणोपाधिसमन्वित ससारधर्मवदवभासमानमविवेकिना तदेव स्वात्मस्थममुत्र नित्यविज्ञानघनस्वभावं सर्वससारधर्मवर्जित ब्रह्म। यच्चामुत्रामुष्मिन्नात्मनि स्थित तदेवेह नामरूपकायकरणोपाधिमनुविभाव्यमान नान्यत्। तत्रैव सत्युपाधिस्वभावभेददृष्टिलक्षणयाविद्यया मोहित सन् य इह ब्रह्मण्यनानाभूते परस्मादन्योऽह मत्तोऽन्यत्पर ब्रह्मेति नानेव भिन्नमिव पश्यत्युपलभते स मृत्योर्मरणान्मरणं मृत्यु पुन: पुनर्जन्ममरणभावमाप्नोति प्रतिपद्यते। तस्मात्तथा न पश्येत् विज्ञानैकरसं नैरन्तर्येणाकाशवत्परिपूर्णं ब्रह्मैवाहमस्मीति पश्येदिति वाक्यार्थः॥

संस्कृत व्याख्या—यदेव-यावदेव आत्मतत्वम् इह संसारे वर्तते, तदेवात्मतत्वम् अमुत्र लोकान्तरस्थानामपि अस्ति सर्वत्राऽपि ब्रह्मात्मकत्वात् आत्मात्मभेदोनास्ति इत्यर्थः। तत्तच्छरीरकतया ब्रह्मात्मकत्वात्, ज्ञानिनामात्मतत्वविदाम् तथैवानुसन्धीयमानत्वात्—अत उक्तम्, अतमनुरनत्र सूर्यश्चेत्यादि एव च परमात्मनि भेददर्शिनाम स मृत्योः मृत्युमेवाप्नोति संसारात् संसारमेव प्राप्नोति य इह नानेव आत्मभेद पश्यति अत ब्रह्मात्मक सर्व जगत् द्रष्टव्यमितिश्रुत्यर्थः।

हिन्दी शब्दार्थ—यत् = जो परमात्मा। इह = इस लोक मे। तत् एव = वही। अमुत्र = परलोक मे भी। यत् = जो। अमुत्र = परलोक मे। अनु इह = यहाँ पर। यः = जो व्यक्ति। इह = इस विषय मे अर्थात् परमात्मा के विषय में। नाना इव = अनेकत्व अर्थात् परमात्मा अनेक है। स = वह। मृत्योः = मृत्यु से। मृत्युं = मृत्यु को।

भावार्थ—जो परमात्मा इसलोक मे है अर्थात् सर्वव्यापक रूप से प्राणियो में विद्यमान है वही परलोक मे भी है। इसीतरह जो परलोक मे है वही इस लोक मे भी विद्यमान है। अभिप्राय यह कि परमात्मा एक ही है। उसमे अनेकरूपता नही है। जो व्यक्ति इस परमात्मा मे अनेकरूपता देखता है अर्थात् जो व्यक्ति परमात्मा को अद्वितीय नही मानता वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है अर्थात् मरने के बाद भी मुक्त नही हो पाता अपितु मरणशील शरीर को पुनः धारण करने के लिए बाध्य होता है।

10 What, in fact, is here is there also and in the way what is there is here also. The unwise who sees the else entangles into the snare of birth and death again and again.

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ ११ ॥

पदच्छेद—मनसा, एव, इदम्, आप्तव्यम्, न, इह, नाना, अस्ति, किञ्चन। मृत्योः, स, मृत्युं, गच्छति, य, इह, नाना, इव, पश्यति ॥ ११ ॥

अन्वय—मनसा एव इदम् प्राप्तव्य इह किञ्चन नाना न अस्ति • •• ••।

[शा०] मनसेद ब्रह्मैकरसमाप्तव्यमात्मैव नान्यदस्तीति। आप्ते च नानात्वप्रत्युपस्थापिकाया अविद्याया निवृत्तत्वादिह ब्रह्मणि नाना नास्ति

किञ्चनाणमात्रमपि । यस्तु पुनरविद्यातिमिरदृष्ट न मुञ्चति नानेव पश्यति स मृत्योर्मृत्यु गच्छत्येव स्वल्पमपि भेदमध्यारोपयन्नित्यर्थ ॥

सस्कृत व्याख्या—इदम् आत्मतत्वम् मनसा-शुद्धेन मनसा एव आप्तव्यम् नान्यै रुपायैः, यतोहि इह-जगति नाना आत्मभेदम् किञ्चननास्ति अतः स मृत्यो एक ससारात्-मृत्युम्-अन्य-ससार जन्मान्तर प्राप्नोति य इह नाना इव पश्यति इति स्पष्टोऽर्थः ।

हिन्दी शब्दार्थ—इदम् = यह (परमात्मा) । मनसा एव = मन से ही आप्तव्यम् = प्राप्त किये जाने योग्य है । इह = इसमे । नाना = नानापन । किंचन = कुछ भी । न अस्ति = नही है । य = जो व्यक्ति । इह = इसमें । नाना इव = अनेकरूपता । पश्यति = देखता है । सः = वह । मृत्यो = मृत्यु से । मृत्युम् = मृत्यु को । गच्छति = प्राप्त होता है

भावार्थ—इस परमात्म तत्त्व को मन के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् इन्द्रियातीत होने से परमात्मा को मन के अतिरिक्त किसी दूसरे साधन से प्राप्त कर सकजा सम्भव नही है, मन के द्वारा ही इसे प्राप्व किया जा सकता है। यह अद्वितीय अर्थात् एक ही है। अत इसमें नानापन का सर्वथा अभाव है। जो व्यक्ति परमात्मा को एक मानने के बदले अनेक मानता है वह मरने पर पुन. शरीर धारण करने के लिए विवश होता है।

11. that is to be aqured only by the pure mind. No variety, is there, He who sees as if there is variety, obtains death after death.

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥१२॥

पदच्छेद—अङ्गुष्ठमात्रः, पुरुष, मध्ये, आत्मनि, तिष्ठति । ईशान भूतभव्यस्य, न तत., विजुगुप्सते ॥ एतद्वै, तत् ॥ १२ ॥

अन्वय—अगुष्ठमात्र· पुरुषः आत्मनि मध्ये तिष्ठति । (स) भूतभव्यस्य, ईशाना (इति ज्ञात्वा) तत· न विजुगुप्सते । एतत् वै तत् ।

[शा०] अङ्गुष्ठमात्रोऽङ्गुष्ठपरिमाण. । अङ्गुष्ठपरिमाण हृदय-पुण्डरीकं तच्छिद्रवर्त्यन्त करणोपाधिरङ्गुष्ठमात्रवशपर्वमध्यवर्त्यम्बरवत्,

पुरुष· पूर्णमनेन सर्वमिति मध्य आत्मनि शरीरे तिष्ठति यस्तमात्मान-मीशान भूतभव्यस्य विदित्वा न तत् इत्यादि पूर्ववत् ॥

सस्कृत व्याख्या—अङ्गुष्ठमात्र: अङ्गुष्ठपरिमाण: पुरुषो भूतभव्यस्येशान—कालत्रयवर्ति सकलचेतनाचेतनस्येश्वरः–नियन्ता पुरुषः मध्ये आत्मनि–उपासक-शरीरमध्ये तिष्ठति ततो न विजुगुप्सते—वात्सल्यातिशयादेव चेतनदोषान् न निन्दति किन्तु भोग्यतया पश्यति इत्यर्थ । (श्वेताश्वतरेऽपि–अङ्गुष्ठमात्रोरवितुल्यरूप इत्यादि उक्तत्वात्) न च—अङ्गुष्ठमात्र पुरुषं निरवकर्षयमोबलात् इत्युक्तत्वात्, अन्यत्र श्रुतिस्मृतिषु प्रतिपादितेन जावात्मन , एवास्मिन् मन्त्रे प्रतिपादन किं न स्यादिति (शब्दादेव प्रमित ब्र. सू १।३।२४।) इत्यस्मिन्नाधिकरणे पूर्व पक्षं कृत्वा परमात्मन एव प्रतिपादितम् । अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः अङ्गुष्ठं च समाश्रित इति तैतिरीयेऽपि उक्तत्वात् । एतद्वैतत्—उक्तोऽर्थ तदेव ।

हिन्दी शब्दार्थ—भूतभव्यस्य = भूत और भविष्यत् का । ईशानः = स्वामी । आत्मनि मध्ये = शरीर के मध्य मे । अगुष्ठमात्र = अगूठे के बराबर परिमाण वाले हृदय स्थान में । तिष्ठति = स्थित है । तत. = उसी के जानने से । न विजुगुप्सते = निन्दा को नही प्राप्त होता ।

भावार्थ—परमात्मा ही भूत और भविष्यत् का स्वामी है । वह अन्त करण (अगुष्ठ मात्र स्थान) में निवास करता है । उस परमात्मा को जान लेने वाला साधक पुरुष (कभी) निन्दा को नही प्राप्त होता । यही वह है ।

12, The thumb size Purush lives in the body. Only he is the coutroller of the past and future. Thinking this the wise does not fear. This is that

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उश्वः । एतद्वै तत् ॥१३॥

पदच्छेद—अङ्गुष्ठमात्र., पुरुष , ज्योति., इव, अधूमकः, ईशानः, भूतभव्यस्य, स, एव, अन्य, स, उ, श्वः ॥ १३ ॥

अन्वय—अंगुष्ठमात्र. पुरुष अधूमक. ज्याति. इव (वर्तते) । भूतभवस्य ईशानः·············· ।

[शा०] अङ्गुष्ठमात्र पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकोऽधूमकमिति युक्तं ज्योतिष्परत्वात् । यस्त्वेव लक्षितो योगिभिर्हृदय ईशानो भूतभव्यस्य स नित्य कूटस्थोऽद्येदानी प्राणिषु वर्तमान स उ श्वोऽपि वर्तिष्यते नान्यस्त त्समोऽन्यश्च जनिष्यत ईत्यर्थ, अनेन नायमस्तीति चैक इत्यय पक्षो न्यायतोऽप्राप्तोऽपि स्ववचनेन श्रुत्वा प्रत्युक्तस्तथा क्षणभङ्गवादश्च ॥

संस्कृत व्याख्या—अङ्गुष्ठमात्र अङ्गुष्ठपरिमाणक. पुरुषः अधूमक –धूम रहित (निर्धूम) ज्योति, इव तुल्यः भूतभव्यस्येशान. पूर्वोक्तार्थं, एव, स, एवाद्य अद्यतन पदार्थ जातम स उ श्व.—श्वस्तनपदार्थजातम् कालत्रयपदार्थ-जातम् सर्वं तदात्मकमेवास्ति इत्यर्थ. ।

हिन्दी शब्दार्थ— अगुष्ठमात्रः = अगुष्ठ परिमाण वाले अन्तःकरण में निवास करने वाला । पुरुषः = परमात्मा । अधूमक = धूम-हीन । ज्योति. इव = प्रकाश के समान । भूत-भव्यस्य = भूत और भविष्यत् का । ईशानः = स्वामी । स. एव = वही । अद्य = आज । स उ = वही । श्व = कल है । एतत् वै तत् = यही वह है ।

भावार्थ—वह परमात्मा धूम-रहित अग्नि के समान तेजोमय है । वही भूत और भविष्यत् का स्वामी है । वही आज और वही कल है अर्थात् वह काल के प्रभाव से प्रभावित नही हुआ करता । इस प्रकार की स्थिति वाला तत्त्व ही परमात्मा है ।

13. The thumb-size Purush is like a light without smoke He is the controller of the past and future. He exists today and tomorrow in the very same state This is that.

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान्पृथक्पश्यंस्तानेवानुधावति ॥ १४ ॥

पदच्छेद—यथा, उदकम्, दुर्गे, वृष्टम्, पर्वतेषु, विधावति, एव धर्मान् पृथक् पश्यन् तान् एव, अनुधावति ॥ १४ ॥

अन्वय—यथा दुर्गे वृष्टम् उदक पर्वतेषु विधावति''' ।

[शा०] यथोदक दुर्गे दुर्गमे देश उच्छ्रिते वृष्ट सिक्त पर्वतेषु पर्वतवत्सु निम्नप्रदेशेषु विधावति विकीर्ण सद्विनश्यति एव धर्मानात्मनो भिन्नान्पृथक्पश्यन्पृथगेव प्रतिशरीर पश्यस्तानेव शरीरभेदानुवर्तिनोऽनुविधावति। शरीरभेदमेव पृथक्पुन पुन प्रतिपद्यत इत्यर्थ ॥

सस्कृत व्याख्या—यथा दुर्गे दुर्गभूमौ उच्चै पर्वतादिषु वृष्टमुदक-जलम् पर्वतेषु-विधावति-नाना मार्गेणाधोगच्छति एवं धर्मान् देवमनुष्यादिषु, अन्तर्यामित्वादिरूपेण परमात्मान सन्तमपिभेदेन पश्यन् नानायोनिषु तानेव—ससारान्धकारे एव विधावति-पतति-इत्यर्थ ।

हिन्दी शब्दार्थ—यथा = जिस तरह। दुर्गे = विषम शिखर पर। वृष्टम् = बरसा हुआ। उदकम् = जल। पर्वतेषु = पर्वतीय स्थानो मे। विधावति = बह जाया करता है। एवम् = उसी तरह। धर्मान् = गुणो को। पृथक् = भिन्न अर्थात् गुणी से अलग। पश्यन् = देखता हुआ। तान् एव = उन्ही गुणो को। अनुधावति = अनुगमन करता है।

भावार्थ—जिस प्रकार पर्वत के शिखर पर बरसा हुआ जल विविध उपधाराओ मे विभक्त होकर पर्वत के विभिन्न भागो मे पहुँचता है और विभिन्न नामरूपो के साथ व्यवहृत होता है। परन्तु विविध रूपो मे दिखायी देता हुआ भी वह जलतत्त्व सर्वत्र एक ही रहता है, उसी तरह विविध धर्मो के कारण पृथक्-पृथक् प्रतीत होनेवाला भी वह परमात्मतत्त्व एक ही है। विभिन्न धर्मो के कारण उस परमात्मतत्त्व में नानात्व का अनुभव करनेवाला व्यक्ति उन्ही धर्मो का अनुसरण करता रह जाता है। वह उस परमात्मतत्त्व को नही देख पाता।

14. As water rained on the peak of mountain flows down on hilly regions and in the end disappears, in the same way who sees the Atman differently goes to death.

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥ १५ ॥

पदच्छेद – यथा, उदकम्, शुद्धे, शुद्धम्, आसिक्तम्, तादृग् एव, भवति। एवम्, मुने:, विजानत:, आत्मा, भवति गौतम ॥ १५ ॥

अन्वय—यथा शुद्धे (उदके) आसिक्तं शुद्धम् उदकं तादृक् एव भवति, एवं हे गौतम ! विजानत: मुने: आत्मा भवति।

[शा०] यथोदक शुद्धे प्रसन्ने शुद्ध प्रसन्नमासिक्त प्रक्षिप्तमेकरसमेव नान्यथा तादृगेव भवत्यात्माप्येवमेव भवत्येकत्व विजानतो मुनेर्मनन-शीलस्य हे गौतम ! तस्मात्कुतार्किकभेददृष्टि नास्तिककुदृष्टि चोज्झित्वा मातृपितृसहस्रेभ्योपि हितैषिण वेदेनोपदिष्टमात्मैकत्वदर्शन शान्तदर्पै-रादरणीयमित्यर्थं ।

सस्कृत व्याख्या—यथा शुद्धे-शुद्धे जले, शुद्ध—गच्छंजलम्, आसिक्तं-योजितम् तादृगेव—तत्सदृशमेव भवति न किञ्चिद्वैपरीत्य भवति। एव-इत्थ विजानत -ज्ञानवत मननशीलस्य मुने आत्माऽपि तादृगेव यथावत् परमात्म-स्वरूपज्ञानेन परमात्मसदृशो भवति-(मम साधर्म्यमागता.) इत्यादि उक्तेः सम्भवात् ।

हिन्दी शब्दार्थ—गौतम = हे नचिकेता ! यथा = जैसे । शुद्धे = शुद्ध जलमें । आसिक्तम् = डाला गया । शुद्धम् = शुद्ध उदकम् = जल । तादृक् एव = वैसा ही । भवति = हो जाता है । एवम् = उसी तरह । विजानतः = ज्ञानी । मुनेः = मननशील व्यक्ति की । आत्मा = आत्मा । भवति = हो जाती है ।

भावार्थ—हे नचिकेता ! जैसे शुद्ध जल की बूंदें यदि किसी शुद्ध जल में गिरें तो वे शुद्ध जल के ही रूप को ग्रहण कर लेती है, दोनो एकाकार हो जाते है, उसी तरह परमात्मतत्त्व का ध्यान करने वाले ज्ञानी पुरुष की आत्मा भी परमात्मरूप प्राप्त कर लेती है ।

15. O Gautama ! as pure water being poured in pure water becomes pure and the same thing happens with the Soul of the man of knowledge

द्वितीय अध्याय

द्वितीया वल्ली

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वै तत् ॥ १ ॥

पदच्छेद—पुरम्, एकादशद्वारम्, अजस्य, अवक्रचेतस । अनुष्ठाय, न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्, वै, तत् ।

अन्वय—अजस्य अवक्रचेतस. एकादशद्वार पुरम् अनुष्ठाय (नरः) न शोचति विमुक्त विमुच्यते च ।

[शा०] पुनरपि प्रकारान्तरेण ब्रह्मतत्त्वनिर्धारणार्थोऽयमारम्भो दुर्विज्ञेयत्वाद् ब्रह्मण पुर पुरमिव पुरम् । द्वारपालाधिष्ठात्राद्यनेकपुरोपकरण-सम्पत्तिदर्शनाच्छरीर पुरम् । पुर च सोपकरण स्वात्मनासहतस्वतत्र-स्वाम्यर्थं दृष्टम्, तथेद पुरसामान्यादनेकोपकरणसहत्त शरीर स्वात्मनासहत-राजस्थानीयस्वाम्यर्थ भवितुमर्हति ।

तच्चेद शरीराख्य पुरमेकादशद्वारमेकादश द्वाराण्यस्य सप्त शीर्षण्यानि नाभ्या सहार्वाञ्चि त्रीणि शिरस्येक तैरेकादशद्वार पुरम् । कस्याजस्य जन्मादिविक्रियारहितस्यात्मनो राजस्थानीयस्य पुरधर्मविलक्षणस्य । अवक्रचेतसोऽवक्रमकुटिलमादित्यप्रकाशवन्नित्यमेवावस्थितमेकरूप चेतो विज्ञानमस्येत्वक्रचेतास्तस्यावक्रचेतसो राजस्थानीयस्य ब्रह्मण यस्येद पुर तं परमेश्वर पुरस्वामिनमनुष्ठाय ध्यात्वा, ध्यान हि तस्यानुष्ठान सम्यग्वि-ज्ञानपूर्वम्, तं सर्वैषणाविनिर्मुक्त सन्सम सर्वभूतस्थ ध्यात्वा न शोचति । तद्विज्ञानादभयप्राप्ते शोकावसराभावात्कुतो भयेक्षा । इहैवाविद्याकृत-कामकर्मबन्धनैर्विमुक्तो भवति । विमुक्तश्च सन्विमुच्यते पुन शरीरं न गृह्णातीत्यर्थ ॥

सस्कृत व्याख्या—**अवक्रचेतस–ऋजुबुद्धेः (क्रूरादिप्रवृत्तिवर्जितबुद्धेः) अजस्य–जन्मादिविकाररहितस्य, आत्मनः, एकादशेन्द्रियलक्षणबहिर्निर्गमन द्वारयुक्तं शरीराख्य पुरं भवति, अर्थात्, यथा पुर (नगर) स्वामिनो लोके स्वस्मात्**

स्वपुरं पृथगनुभवति तथा ज्ञानिनः स्वशरीरादात्मानं विविच्य जानाति। अविवेकिनस्तु देहे एवात्मबुद्धिं कुर्वन्ति पृथक् न जानाति। एवं शरीरात्मनोः पृथक्तयाऽनुष्ठाय न शोचति—देहानुबन्धिभिर्दुःखैः कामक्रोधादिभिश्च विमुक्तो भवति, विमुक्तश्च विमुच्यते प्रारब्धकर्मावसाने गीतोगुल्कगत्या (अग्निरादि-मार्गेण) शरीरबन्धं सर्वथापरित्यजति। एतत् वैतत्—एतन्मन्त्रप्रतिपाद्यमुक्त-स्वरूपमपि परमात्मकमेव भवति।

हिन्दी शब्दार्थ—अवक्रचेतसः = कुटिलता से रहित। अजस्य = अजन्मा आत्मा का। एकादशद्वारम् = ग्यारह द्वारोंवाला। पुरम् = शरीर रूपी नगर। अनुष्ठाय = अनुष्ठान करने से। न शोचति = शोक को प्राप्त नही होता। विमुक्तश्च = मुक्त होकर। विमुच्यते = बन्धन से छूट जाता है।

भावार्थ—यह आत्मा अजन्मा है। उसमे चित्त की सांसारिक कुटिलता जैसी कुटिलता नही है। यह ग्यारह दरवाजोवाला शरीर ही उस आत्मा का नगर है। अर्थात् इस शरीर रूपी नगर से आत्मा के बाहर निकलने के ग्यारह दरवाजे है। वैदिक कर्मों का अनुष्ठान करने पर वह शोक से मुक्त हो बन्धन से छुटकारा पा जाती है। यही वह है।

1 This is unborn and unchangable This dwells in the city of eleven gates Meditating on such Atman one does not grieve but breaking all the bondages gets perfect freedom.

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥२॥

पदच्छेद—हंस, शुचिषत्, वसु, अन्तरिक्षसत्, होतावेदिषद्, अतिथिः दुरोणसत्। नृषद् वरसद्, ऋतसद् व्योमसत्। अब्जा, गोजा, ऋतजा, अद्रिजा, ऋतम्, बृहत्।

अन्वय—(सः आत्मा शुचिषत्, हंसः अन्तरिक्षसदत् वसुः वेदिषत् होता दुरोणसत्, अतिथि नृषत्, वरसत्, ऋतसत्, व्योमसत् अब्जा, गोजाः, ऋतजाः, अद्रिजाः, ऋतम्, बृहत्।

[शा०] हसो हन्ति गच्छतीति । शुचिपच्छुचौ दिव्यादित्यात्मना सोदतीति । वसुर्वासयति सर्वानिति । वाय्वात्मनान्तरिक्षे सीदतीत्यन्तरिक्षसत् । होताग्नि "अग्निर्वै होता" इति श्रुते । वेद्या पृथिव्या सीदतोति वेदिषद् । "इय वेदि परोऽन्त. पृथिव्या " (ऋ० स० २।३।२०) इत्यादिमन्त्रवर्णात् । अतिथि सोम मन्दुरोणे कलशे सीदतीति दुरोणसत् ब्राह्मण अतिथिरूपेण वा दुरोणेपु गृहेपु सीदतीति । नृपन्नृपु मनुष्येपु सीदतीति नृपत् । वरसद् वरेपु देवेपु सीदतीति, ऋतसदृत सत्य यज्ञो वा तस्मिन्सीदतीति । व्योमसद्व्योम्न्याकाशे सीदतीति व्योमसत् । अब्जा अप्सु शङ्खशुक्तिमकरादिरूपेण जायत इति । गोजा गवि पृथिव्या व्रीहियवादिरूपेण जायत इति । ऋतजा यज्ञाङ्गरूपेण जायत इति । अद्रिजा पर्वतेभ्यो नद्यादिरूपेण जायत इति सर्वात्मापि सन्नृतमवितथस्वभाव एव । बृहन्महान्सर्वकारणत्वात् । यदाप्यादित्य एव मन्त्रेणोच्यते तदाप्यस्यात्मस्वरूपत्वमादित्यस्येत्यङ्गीकृतत्वाद् ब्राह्मणव्याख्यानेऽप्यविरोध. । सर्वव्याप्येक एवात्मा जगतो नात्मभेद इति मन्त्रार्थ. ॥

सस्कृत व्याख्या—पुनरपि, अस्यात्मनः सर्वात्मकमेव प्रकाशयति–हस , शुचिषद्–शुचौ–ग्रीष्म–ऋतौ सीदति–शुचिषद्, तेजस्वी इत्यर्थः । वसु — वासयति इति वसुर्वायु', अन्तरिक्षसत्–अन्तरिक्षे–आकाशे सीदतीति–आकाशगतो वायुस्वरूप , होता–ऋत्विग्विशेषोऽग्निर्वा, वेदिषत्–वेद्यन्तर्गत., दुरोणसत्–गृहागतोऽतिथि , नृषद्–नृषु–सीदति–मनुष्यादि चेतनेषु आत्मतया वर्तमान, वरषद्–वरेषु- देवादिश्रेष्ठेषु सीदति–वर्तते स एव व्योमसद्–व्योम्नि–परमपदे प्रत्यगात्मतया वर्तमानम् । अब्जा -जलजा, गोजा–भूमिजा , ऋतजा–यज्ञोत्पन्ना कर्मफलभूताश्च सर्गादय इत्यर्थ । अद्रिजा –पर्वतजाः एतद्सर्वं बृहद्ऋतम्–अपरिच्छिन्नसत्यस्वरूप ब्रह्मात्मकमेवेत्यर्थ ।

हिन्दी शब्दार्थ –हस = सूर्य (यहाँ जीवात्मा से तात्पर्य है जो अज्ञान का विनाशक है) । शुचिषत् = पवित्रस्थान मे स्थित रहने वाला है । वसुः अन्तरिक्षषत् = बन्धन से मुक्त होने पर अन्तरिक्ष मे विचरण करने वाला है । वेदिषत् = यज्ञ वेदी पर स्थित रहकर । होता = यज्ञादि कर्मो का अनुष्ठाता । अतिथिः = एक ही शरीर मे स्थित न रहनेवाला । दुरोणसत् = अनेक आश्रमो मे विचरण करनेवाला । नृपत् = मनुष्ययोनि को प्राप्त करनेवाला । वरसत् = ज्ञानी (श्रेष्ठ)

पुरुषो का सम्पर्क प्राप्त करनेवाला। ऋतसत् = सत्य में निवास करनेवाला। अब्जा = जल में जन्म लेनेवाला। गोजा = पृथ्वी पर जन्म लेनेवाला। ऋतजा = विविध योनियो मे जन्म लेनेवाला। अद्रिजा = पर्वतो पर भी जन्म लेनेवाला है। बृहत् ऋतम् = महान् सत्य है।

भावार्थ—यहाँ यह बताया गया है कि विविध स्थितियो के अनुसार यह जीवात्मा विभिन्न अवस्थाओ को ग्रहण करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र है। अर्थात् वह किसी एक रूप या अवस्था के बन्धन में रहनेवाला नही है—

अज्ञान के विनाशक इस जीवात्मा की स्थिति सर्वथा पवित्र है। मुक्त होने पर यह अन्तरिक्ष मे स्थित रहता है। मनुष्य रूप में यह श्रेष्ठ, ज्ञानी पुरुषो का सत्सग प्राप्त करता है। यज्ञ की वेदी पर स्थित होकर यह यज्ञादि कर्मो को सम्पन्न करता है। यह एक ही शरीर में स्थित रहनेवाला नही (अपितु) अनेक आश्रमो मे विचरण करनेवाला है। यह सत्य मे निवास करनेवाला, जल में जन्म लेनेवाला, पृथ्वी पर जन्म लेनेवाला, विविध योनियो में जन्म लेनेवाला, पर्वतो पर भी जन्म ग्रहण करने वाला और एक महान् सत्य है।

2. Atman in the form of the sun dwells in the heaven, in the form of the air dwells in the sky, in the form of fire He exists in the Altar, in the form of soma He dwells in in the jar. He lives among men and gods. He resides in the sacrifice and sky. He is born in water, born on earth and born on mountains even. He immutable and he is great.

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ३ ॥

पदच्छेद—ऊर्ध्वम्, प्राणम, उन्नयति, अपानम्, प्रत्यग्, अस्यति। मध्ये, वामनम्, आसीनम्, विश्वेदेवाः, उपासते।

अन्वय—(आत्मा) प्राणम् ऊर्ध्वम् उन्नयति अपानं प्रत्यक् अस्यति। मध्ये आसीन वामनं विश्वे देवा उपासते।

[शां] ऊर्ध्वं हृदयात्प्राणं प्राणवृत्ति वायुमुन्नयत्यूर्ध्वं गमयति। तथा-पानं प्रत्यगधोऽस्यति क्षिपति य इति वाक्यशेषः। त मध्ये हृदयपुण्डरी-

काकाश आसीनं बुद्धावभिव्यक्तविज्ञानप्रकाशन वामन सभजनीय सव विश्वे देवाश्चक्षुरादय प्राणा रूपादिविज्ञानं बलिमुपाहरन्तो विश इव राजानमुपासते तादर्थ्येनानुपरतव्यापारा भवन्तीत्यर्थ । यदर्था यत्प्रयुक्ताश्च सर्व वायुकरणव्यापारा. सोऽन्यः सिद्ध इति वाक्यार्थ ॥

सस्कृत व्याख्या—सर्वेषा हृदयगत. परमात्मा प्राणम्-प्राणवायुम्-ऊर्ध्वम्-ऊर्ध्वमुखम्, उन्नयति-उद्गिरति । अपानम्-अपानवायुम् प्रत्यग् अधोमुखम्' अस्यति प्रक्षिपति । मध्ये हृदयपुण्डरीकमध्ये, आसीनम् विद्यमानम् वामनम् वमनीयम् (भजनीयम्) अथवा ह्रस्वपरिमाणम्, तम् विश्वेदेवसत्वाप्रकृतय' उपासते आराध्यते इत्यर्थः ।

हिन्दी शब्दार्थ—प्राणम् = प्राण वायु को । ऊर्ध्वम् = ऊपर । उत् नयति = ले जाता है । अपानम् = अपान वायू को । प्रत्यक् = हृदय देश के नीचे की ओर । अस्यति = फेंकता है । मध्ये = मध्य मे । आसीनम् = स्थित । वामनम् = इनी आत्मा को । विश्वे = सभी । देवा = इन्द्रियाँ । उपासते = सेवा करती है ।

भावार्थ—आत्मा ही प्राणवायु को ऊपर ले जाता तथा अपान वायु को नीचे फेंक देता है । यह मध्यदेश मे स्थित है । सभी इन्द्रियाँ इसी की सेवा मे रत है अर्थात् इसी की प्रेरणा से समस्त इन्द्रियाँ कार्य रत रहती है ।

3. All the gods worship that adorable God centered in the heart, who pushes the Pran upward and sends the Apan backward.

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते एतद्वै तत् ॥ ४ ॥

पदच्छेद—अस्य, विस्रसमानस्य, शरीरस्थस्य, देहिन । देहाद्, विमुच्यमानस्य, किम्, अत्र, परिशिष्यते ॥ एतद्, वै, तत् ।

अन्वय—शरीरस्थस्य अस्य देहिन देहात् विमुच्यमानस्य विस्रसमानस्य अत्र किं परिशिष्यते । एतत् वै तत् ।

[शा०] अस्य शरीरस्थस्यात्मनो विस्रसमानस्यास्रसमानस्य भ्रशमानस्य देहिनो देहवत., विस्रसनशब्दार्थमाह—देहाद्विमुच्यमानस्येति किमत्र परिशिष्यते प्राणादिकलापे न किञ्चन परिशिष्यते । अत्र देहे

पुरस्वामिविद्रवण इव पुरवासिना यस्यात्मनोऽपगमे क्षणमात्रात्कार्यकरण-कलापरूप सर्वमिद हृतबलं विध्वस्त भवति विनष्टभवति सोऽन्य' सिद्ध ।

सस्कृत व्याख्या—अस्य—उपासकस्य, देहिन —आत्मन शरीरस्थस्य देह-प्रतिष्ठितस्य विस्रममानस्य शिथिलीभावप्राप्तशरीरस्य देहाद् विमुच्यमानस्य (म्रियमाणस्य) अत्र–अस्मिन् संसारे किम् अवशिष्यते--कृतकृत्यत्वा किञ्चिदपि-कर्तव्य कर्म नावशिष्यते इत्यर्थ., तस्य (तावदेवचिरं यावन्न विमोक्ष्ये) इति श्रुत्युक्तप्रकारेण शरीरपात एव अन्तराय प्रारब्धाधीनत्वात् ।

हिन्दी शब्दार्थ—शरीरस्थस्य = शरीर मे स्थित । अस्य = इस । देहिन = आत्मा के । विमुच्यमानस्य = छोडकर । विस्रसमानस्य = पृथक् हो जाने पर । अत्र = यहाँ । किम् = क्या । परिशिष्यते = शेष रह जाता है । एतत् वै तत् = यही वह है ।

भावार्थ- शरीर मे स्थित यह आत्मा जब शरीर को छोड़कर अलग हो जाता है तब इस शरीर मे क्या शेष रह जाता है अर्थात् कुछ शेष नही रह जाता ।

4. When this self the inhabitant in the body being free gets away from the body-what other remains there ? It is certainly that.

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥ ५ ॥

पदच्छेद न, प्राणेन, न, अपानेन, मर्त्य , जीवति, कश्चन । इतरेण तु, जीवन्ति यस्मिन् एतौ, उपाश्रितौ ।

अन्वय—कश्चन मर्त्य न प्राणेन न अपानेन जीवति । तु इतरेण जीवन्ति यस्मिन् एतौ उपाश्रितौ ।

[शा०] न प्राणेन नापानेन चक्षुरादिना वा मर्त्यो मनुष्यो देहवान् कश्चन जीवति न कोऽपि जीवति न ह्येषां परार्थाना संहत्यकारित्वाज्जीवन-हेतुत्वमुपपद्यते । स्वार्थेनासंहतेन परेण केनचित्प्रयुक्त संहतानामवस्थान न दृष्ट गृहादीना लोके; तथा प्राणादीनामपि सहतत्वाद्भवितुमर्हति । अत इतरेणैव सहतप्राणादिविलक्षणेन तु सर्व सहता सन्तो जीवन्ति प्राणान्धार-यन्ति । यस्मिन्सहतविलक्षणात्मनि सति परस्मिन्नेतौ प्राणापानौ चक्षुरा-

दिभिः सहतावुपाश्रितौ यस्यासहतस्यार्थे प्राणापानादिः स्वव्यापारं कुर्वन्वर्तते सहतः सन्सः ततोऽन्य सिद्ध इत्यभिप्राय ॥

संस्कृत व्याख्या - कश्चन मर्त्य -मरणधर्माचेतनः प्राणेन- प्राणवायुमहिम्ना न जीवति न च अपानेन-अपानवायुना जीवति किन्तु इतरेण जीवति केनेतरेणेति आह—यस्मिन् एतौ-द्वौ आश्रितौ--तदधीनप्राणापानौ जीवनीत्यर्थः तदधीनमेव सर्वेणा जीवनम् ।

हिन्दी शब्दार्थ—कश्चन = कोई भी । मर्त्य = मनुष्य । न प्राणेन = न तो प्राण से । न अपानेन = न अपान से । जीवति = जीवित रहता है । यस्मिन् = जिस (आत्मा) में । एतौ=प्राणापान । उपाश्रितौ = आश्रित रहते हैं । इतरेण = दूसरे अर्थात् आत्मा से । जीवन्ति = जीवित रहते हैं ।

भावार्थ—कोई भी मनुष्य प्राण या अपान वायु के कारण नही जीवित रहता है, अपितु आत्मा के कारण जीवित रहता है । इसी आत्मा के कारण वह जीवित है । प्राण और अपान वायु तो उसी आत्मा के आश्रित हैं ।

5 Pran and Apan are not the source of life of mortals but something else on which these two (Pran and Apan) depend.

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥ ६ ॥

पदच्छेद—हन्त, ते, इदम्, प्रवक्ष्यामि गुह्यम्, ब्रह्म, सनातनम् । यथा, च, मरणम् प्राप्य, आत्मा, भवति, गौतम ।

अन्वय—हे गौतम ! हन्त ते इद गुह्य सनातन ब्रह्म प्रवक्ष्यामि । च मरणं प्राप्य आत्मा यथा भवति ।

[शां०] हन्तेदानी पुनरपि ते तुभ्यमिद गह्यं गोप्य ब्रह्म सनातनं चिरन्तन प्रवक्ष्यामि यद्विज्ञानात्सर्वससारोपरमो भवति, अविज्ञानाच्च यस्य मरण प्राप्य यथात्मा भवति यथा ससरति तथा श्रृणु हे गौतम ॥

संस्कृत व्याख्या —हे गौतम ! गौतमगोत्रोद्भव ! हन्त ! श्रवणाधिकारितया हर्षसूचनाय हन्त इति पदम् ते तुभ्यम्—गुह्यम् अतिरहस्यमयम् सना-

तनम् शाश्वतम् ब्रह्म पुनरपि प्रवक्ष्यामि--कथयामि । अयमात्मा--मरणं मोक्ष प्राप्य यथा यत् प्रकार विशिष्टोभवति ।

हिन्दी शब्दार्थ—हे गौतम = हे नचिकेता । हन्त ते = तुम्हारे लिए । इदम् = इस । गुह्यम् = रहस्यमय । सनातन = शाश्वत । ब्रह्म = परमात्मा के विषय मे । प्रवक्ष्यामि = कहूँगा । मरणम् = मृत्यु को । प्राप्य = प्राप्त कर । यथा = जैसी (अवस्था) आत्मा भवति = आत्मा की होती है

भावार्थ—हे नचिकेता ! अब मै तुम्हारे लिए इस रहस्यमय ब्रह्म के विषय मे कहूँगा । (और यह भी बतलाऊँगा कि) मृत्यु के बाद जीवात्मा की क्या स्थिति रहती है । अर्थात् ब्रह्म के रहस्य तथा मृत्यु के उपरान्त प्राप्त होनेवाली जीवात्मा की स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रस्ताव यहाँ यमाचार्य ने किया है ।

6. Well O Gautama ! I tell you of this hidden and everlasting Brahman and also I shall tell you again what happens to the Self after death

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७ ॥

पदच्छेद—योनिम् अन्ये, प्रपद्यन्ते, शरीरत्वाय, देहिन । स्थाणुम्, अन्ये, अनुसयन्ति यथाकर्म, यथाश्रुतम् ।

अन्वय —यथाकर्म यथाश्रुत अन्ये देहिन शरीरत्वाय योनि प्रपद्यन्ते अन्ये स्थाणुम् अनुसयन्ति ।

[शा०] योनि योनिद्वार शुक्रबीजमन्विता सन्तोऽन्ये केचिद-विद्यावन्तो मूढा प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय शरीरग्रहणार्थं देहिनो देवहन्त, योनि प्रविशन्तीत्यर्थ । स्थाणु वृक्षाद्रिस्थावरभावमन्येऽत्यन्ताधमा मरण प्राप्यानुसयन्त्यनुगच्छन्ति यथाकर्म यद्यस्य कर्म तद्यथाकर्म यैर्यादृश कर्मेह जन्मनि कृत तद्वशेनेत्येतत् । तथा च यथाश्रुतं यादृश च विज्ञानमुपार्जितं तदनुरूपमेव शरीरं प्रतिपद्यते इत्यर्थ । "यथाप्रज्ञ हि सभवा" इति श्रुत्यन्तरात् ॥

संस्कृत व्याख्या—अन्ये—त्वादृशभिन्ना ब्रह्मकथाश्रवणविमुखाः देहिन - आत्मानः शरीरत्वाय-शरीरपरिग्रहाय योनिम् ब्राह्मणादियोनि प्रपद्यन्ते-परि-

गृह्णन्ति अन्ये ततो कर्मविधुराः स्थाणु स्थावरादिभावम् अनुसंयन्ति अनुगच्छन्ति । तादृशाः यथाकर्म स्वानुष्ठितयज्ञादिकर्मानुष्ठानामतिक्रमेणेन आचरणेन च वेदोक्त-रमणीयचरणाः इत्युक्तप्रकारेण शुभाशुभयोनिमप्राप्नुवन्ति एवं यथा श्रुतमपि-श्रवणानुरोधादपि तद्भेदेन गतिभेद इति भावार्थ ।

हिन्दी शब्दार्थ—अन्ये = कुछ । देहिनः = प्राणी । यथाकर्म = अपने कर्म के अनुसार । यथाश्रुतम् = अपने ज्ञान के अनुसार । शरीरत्वाय = शरीर धारण करने के लिए । योनिम् = (मानव, कीट, पतंग आदि) योनि को । प्रपद्यन्ते = प्राप्त होते हैं । अन्ये = कुछ दूसरी तरह के । स्थाणुम् = स्थावर शरीर को । अनुसयन्ति = मरणोपरान्त प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ—कुछ लोग अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार शरीर धारण के लिए जीवलोक की किसी योनि को प्राप्त होते हैं और कुछ लोग (अशुभ कर्मों के कारण) मरणोपरान्त स्थावर शरीर प्राप्त करते हैं । तात्पर्य यह कि परमपद की प्राप्ति से पूर्व प्राणी को जन्म-मरण के बन्धन में आबद्ध रहना पडता है ।

7 Some souls go to the womb for assuming body and some go to the innumerable things, as trees or plant, according to their previous knowledge and work

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥८॥

पदच्छेद—य , एष , सुप्तेषु, जागर्ति, कामम्, कामम्, पुरुष , निर्मिमाण , तद्, एव, शुक्रम्, तद्, ब्रह्म, तद्, एव, अमृतम्, उच्यते । तस्मिन्, लोका , श्रिता , सर्वे, तद्, उ, न, अत्येति, कश्चन, एतद् वै, तत् ॥ ८ ॥

अन्वय—काम काम निर्मिमाण य एष पुरुष सुप्तेषु जागर्ति तत् एव शुक्रम् तत् ब्रह्म तत् एव अमृतम् उच्यते । तस्मिन् सर्वे लोका श्रिता । तत् उ कश्चन न अत्येति । एतत् वै तत् ।

[शा०] य एष सुप्तेषु प्राणादिषु जागर्ति न स्वपिति । कथम् ? कामं काम त तमभिप्रेतं स्त्र्याद्यर्थमविद्यया निर्मिमाणो निष्पादयञ्जागर्ति पुरुषो यस्तदेव शुक्रं शुभ्र शुद्ध तद्ब्रह्म नान्यद् गुह्य ब्रह्मास्ति । तदेवा-

मृतमविनाश्युच्यते सर्वशास्त्रेषु । किंच पृथिव्यादयो लोकास्तस्मिन्नेव सर्वे ब्रह्मण्याश्रिता· सर्वलोककारणत्वात्तस्य । तदु नात्येति कश्चनेत्यादि पूर्ववदेव ।

संस्कृत व्याख्या—य एषः परमात्मा सुप्तेषु सर्वेषु भूतेषु स्वयं जागर्ति अन्तर्यामितया काम कामं संकल्प्यसकल्प्यनिर्मिमाण , पुन पुनः निर्माणं कुर्वन् पुरुषः स्वय पृथकतया वर्तते इत्यर्थ· । तदेव ब्रह्मव्यापकतता सर्वप्रकाशकम्, तदेव अमृतम् सर्वथाऽनधीनम् (परमात्मतन्त्रम्) उच्यते न तु अन्यः त्वत्सदृशः स्वतन्त्रः । तस्मिन्नेव सर्वेलोकाः, आश्रिताः सम्बद्धाः कश्चनापि न तद् ब्रह्म उ इति निश्चयेन अत्येवि अतिक्रमितु शक्नोति ।।

हिन्दी शब्दार्थ—य एष· = जो यह । पुरुषः = परमात्मा । कामं कामम् = इच्छानुरूप अपनी कामना की पूर्ति के लिए । निर्मिमाणः = निर्माण करते हुए । सुप्तेषु = अज्ञानी जीवो मे । जागर्त्ति = जागता रहता है । तत् एव = वही । शुक्रम् = शुद्ध । तत् ब्रह्म = महान् । तत् एव = वही । मृत्यु से रहित । उच्यते = कहा जाता है । तस्मिन् = उसी ब्रह्म मे । सर्वे लोका. = समस्त संसार । श्रिताः = स्थित है । तत उ = उसका । कश्चन = कोई भी । न अस्येति = अतिक्रमण नही कर सकता ।

भावार्थ—सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण करनेवाला जो परमात्मा सोये हुए (अज्ञानी) लोगो को उनके कर्मानुसार फल प्रदान करता हुआ अन्तर्यामी रूप से जागता रहता है, वही शुद्ध तथा चिरन्तन ब्रह्म है अर्थात् वह कर्म के बन्धन का कलंक उसका स्पर्श नही कर पाता । सम्पूर्ण लोक उसी के आश्रय में स्थित है । कोई भी उसका अतिक्रमण नही कर सकता।

8. The Purush remains awake and creates desirable things even when we fall asleep. He is called Brahman and he immortal. The entire world is fastend to him and none can infringe him. This is that.

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।९।।

पदच्छेद—अग्नि:, यथा, एक, भुवनम्, प्रविष्ट, रूपम्, प्रतिरूप: बभूव । एक., तथा, सर्वभूतान्तरात्मा, रूपम्, रूपम्, प्रतिरूप:, बहि:, च ॥ ९ ॥

अन्वय—यथा भुवन प्रविष्ट: एक: अग्नि रूप रूप प्रतिरूप बभूव तथा एक सर्वभूतान्तरात्मा रूप रूप प्रतिरूप: बहि. च (वर्तते) ।

[शा०] अग्निर्यथैक एव प्रकाशात्मा सन्भुवनं भवन्त्यस्मिन्भूतानीति भुवनमय लोकस्तमिम प्रविष्टोऽनुप्रविष्ट । रूप रूपं प्रतिदार्वादिदाह्यभेदं प्रतीत्यर्थ., प्रतिरूप तत्र तत्र प्रतिरूपवान्दाह्यभेदेन बहुधो बभूव, एक एव तथा सर्वभूतान्तरात्मा सर्वेषा भूतानामभ्यन्तर आत्मातिसूक्ष्मत्वाद् दार्वादिष्विव सर्वदेह प्रति प्रविष्टत्वात्प्रतिरूपो बभूव बहिश्च स्वेन अविकृतेन स्वरूपेणाकाशवत् ।

सस्कृत व्याख्या—यथा यादृश एकोऽग्नि: भुवन ब्रह्माण्डान्तरगत: त्रिवृतकरणतया प्रवृष्ट: सर्वत्र विद्यमान. सन् रूप रूप प्रत्येकस्वरूपे विद्यमान: अन्त:-बहिश्च विद्यते अर्थात् सर्वासु भौतिकव्यक्तिषु तेजोधातुमिलित्वा सक्रान्त:, तथा एक एव परमात्मा सर्वभूतान्तरात्मा सर्वान्तर्यामि: सन् बहिरपि तिष्ठतीत्यर्थ. ।

हिन्दी शब्दार्थ–यथा=जैसे । एक: अग्नि =एक ही अग्नि प्रवेश करके । रूपम् रूपम् = प्रत्येक रूप के अनुरूप । प्रतिरूप=उसी के समान रूप वाला । बभूव = हो गया । तथा = उसी तरह । सर्वभूतान्तरात्मा = सम्पूर्ण प्राणियो में विद्यमान परमात्मा । एक: = एक होने पर भी । रूप रूपम् = प्रत्येक रुप में प्रतिरूप = प्रत्येक आकारवाला । बहिश्च = बाहर भी ।

भावार्थ—यहाँ परमात्मा की सर्वव्यापकता को स्पष्ट करने के लिए अग्नि का दृष्टान्त उपस्थित किया गया है ।

अग्नि वास्तव मे प्रत्येक पदार्थ के भीतर विद्यमान है । जिस पदार्थ का जैसा रूप है वैसा ही रूप उसमें अग्नि भी ग्रहण कर लेता है । जिस प्रकार पदार्थ से भिन्न वहाँ अग्नि का कोई अलग आकार नहीं दिखायी देता । ठीक उसी तरह विश्व के प्रत्येक रूप मे परमात्मा की स्थिति विद्यमान है, किन्तु उसका कोई अलग रूप प्रगट नही है, फिर भी प्राणियो के भीतर रहने के साथ-साथ वह बाहर भी है ।

9. Just as fire-though one-after entering the world assumes different shapes according to the shapes in the same way the soul inside all the livings assumes different shapes for different creatures and it is outside too

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥

पदच्छेद—वायुः, यथा, एकः, भुवनं, प्रविष्टः रूपं रूपं प्रतिरूपः, बभूव। एकः, तथा, सर्वभूतान्तरात्मा, रूपं, रूपं, प्रतिरूपः बहिः, च।

[शां०] वायुर्यथैक इत्यादि। प्राणात्मना देहेष्वनुप्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूवेत्यादि समानम्।

संस्कृत व्याख्या—वायु वायुर्दृष्टान्तेनाह शेष पूर्वमन्त्रवत् व्याख्या ज्ञेया।

हिन्दी शब्दार्थ—यथा = जैसे। एक वायुः = एक ही पवन। भुवन = लोक। रूप रूपम् = प्रत्येक रूप मे। प्रतिरूपः = प्रत्येक रूप वाला। बभूव = हो गया है। तथा = उसी तरह। एकः सर्व भूतान्तरात्मा = सभी प्राणियो मे विद्यमान एक ही परमात्मा। रूप रूप = प्रत्येक रूप मे। प्रतिरूप = विविधरूप वाला। बहिः = बाहर। च = भी।

भावार्थ—यहाँ परमात्मा की एकरूपता तथा सर्वव्यापकता को वायु के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है।

जिस तरह एक ही वायु प्राणियो के भीतर तथा बाहर एक रूप मे ही व्याप्त हो रहा है उसी तरह परमात्मा भी सम्पूर्ण प्राणियो के भीतर तथा बाहर भी व्याप्त है। इस प्रकार परमात्मा सर्वव्यापक होते हुए भी निर्विकार बना रहता है।

10 Just as air, though one after coming into this world assumes different shapes according to the different shapes, in the same way, the soul inside the livings, though one, assumes different shapes according to different forms The soul is as inside is as outside too.

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥११॥

पदच्छेद—सूर्यः, यथा, सर्व, लोकस्य, चक्षुः, न, लिप्यते, चाक्षुषै बाह्य-दोषैः । एक , तथा, सर्वभूतान्तरात्मा, न, लिप्यते, लोकदु खेन बाह्यः ।

अन्वय यथा सूर्यः सर्वलोकस्य चक्षु (सन् अपि) चक्षुपै बाह्यदोपै नः लिप्यते, तथा एक· सर्वभूतान्तरात्मा बाह्यः लोकदुःखेन न लिप्यते ।

[शा०] सूर्यो यथा चक्षुप आलोकेनोपकार कुर्वन्मूत्रपुरीषाद्यशुचि-प्रकाशनेन तद्दर्शिन सर्वलोकस्य चक्षुरपि सन्न लिप्यते चाक्षुषैरशुच्यादि-दर्शननिमित्तैराध्यात्मिकै पापदोषैर्बाह्यैश्चाशुच्यादिससर्गदोपै । एकः मस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदु खेन बाह्य । लोको ह्यविद्यया स्वात्मन्यध्यस्ततया कालकर्मोद्भव दु खमनुभवति । न तु सा परमार्थतः स्वात्मनि । यथा रज्जुशुक्तिकापरगगनेपु सर्परजतोदकमलानि न रज्ज्वा-दीना स्वतो दोपरूपाणि सन्ति । ससर्गिणि विपरीतबुद्धयध्यासनिमित्तात्त-द्दोषवद्विभाव्यन्ते । न तद्दोषैस्तेषा लेप· । विवरीतबुद्धयध्यासबाह्या हि ते ।

तथात्मनि सर्वो लोकः क्रियाकारकफलात्मक विज्ञान सर्पादिस्थानीयं विपरीतमध्यस्य तन्निमित्त जन्ममरणादिदु खमनुभवति । न त्वात्मा सर्व-लोकात्मापि सन्विपरीताध्यारोपनिमित्तेन लिप्यते लोकदु खेन । कुत. ? बाह्य रज्वादिवदेव विपरीतबुद्धयध्यासबाह्यो हि स इति ।

सस्कृत व्याख्या—यथा सूर्यः सर्वलोकस्य चक्षु नेत्रम् (आदित्यश्चक्षुर्भू-त्वाऽऽक्षिणी प्राविशत) इति ऐतरेय श्रुत्युक्तप्रकारेण चक्षुरधिष्ठतया । सर्व-चक्षुरन्तर्गतोऽपि चाक्षुषै चक्षुपा गृह्यन्ते इति चाक्षुपनि तैश्चाक्षुपैः बाह्यदोषैः बहिर्गतैर्दोषै र्न लिप्यते । तथा एक· सर्वभूतान्तरात्मा सर्वान्तर्यामी भूत्वाऽपि बाह्य , लोकदु खेन बहिर्भूत्वा लोकदु खेन न लिप्यते ।

हिन्दी शब्दार्थ—यथा = जिस तरह । सर्वलोकस्य = सम्पूर्ण ससार का । चक्षुः = नेत्र । सूर्यं = सूर्य । चाक्षुषै = नेत्र सम्बन्धी । बाह्य दोषैः = बाहरी दोषो से । न लिप्यते = लिप्त नही होता है । तथा = उसी प्रकार । एक = अद्वितीय । सर्वभूतान्तरात्मा = सभी मे व्याप्त होकर भी । बाह्य = पृथक् रहकर । न लिप्यते = पदार्थों में लिप्त नही रहता ।

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य सम्पूर्ण ससार के नेत्र होते हुए भी, देखे जाने वाले बाह्य पदार्थो के दोषो से पृथक् रहता है उसी प्रकार सभी इन्द्रियो मे व्याप्त होकर भी अन्तरात्मा लोक के दुःखो में लिप्त नही होता।

11 Just as the sun which is the eye of the entire world is not currupted by the visual and outer curruptions, in the way, the Atman that exists in all the things is not stained by the sorrow of the world, as it is above all

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।१२।

पदच्छेद—एक, वशी, सर्वभूतान्तरात्मा, एकम्, रूपम्, बहुधा, य, करोति तम्, आत्मस्थम्, ये, अनुपश्यन्ति, धीरा, तेषाम, सुखम्, शाश्वतम्, न, इतरेषाम् ॥ १२ ॥

अन्वय—वशी एकः सर्वभूतान्तरात्मा य एक रूपं बहुधा करोति तं ये धीरा आत्मस्थ अनुपश्यन्ति तेषा शाश्वत सुख (भवति), इतरेषा न (भवति)। (अथवा ······ आत्मस्थं त ये धीरा. अनुपश्यन्ति)

[शा०] स हि परमेश्वर. सर्वगतः स्वतत्र एको न तत्समोऽयधिको वान्योऽस्ति वशी सर्वं ह्यस्य जगद्वशे वर्त्तते। कुत. ? सर्वभूतान्तरात्मा। यत एकमेव सदैकरसमात्मान विशुद्धविज्ञानरूप नामरूपाद्यशुद्धोपाधिभेद-वशेन बहुधानेकप्रकार य करोति स्वात्मसत्तामात्रेणाचिन्त्यशक्तित्वात्। तमात्मस्थ स्वशरीरहृदयाकाशे बुद्धौ चैतन्याकारेणाभिव्यक्तमित्येतत्।

न हि शरीरस्याधारत्वमात्मन., आकाशवदमूर्त्तत्वात्, आदर्शस्थ मुख-मिति यद्वत्। तमेतमीश्वरमात्मान ये निवृत्तबाह्यवृत्तयोऽनुपश्यन्ति आचार्यागमोपदेशमनु साक्षादनुभवन्ति धीरा विवेकिनस्तेषा परमेश्वर-भूताना शाश्वत नित्य सुखमात्मानन्दलक्षण भवति, नेतरेषा बाह्यासक्त-बुद्धीनामविवेकिना स्वात्मभूतमप्यविद्याव्यवधानात्।

व्याख्या—एकः अद्वितीय. (तादृश द्वितीयाभावः) वशी वशकान्तो पम् कान्ति इच्छा अर्थात् इच्छातन्त्राः (इच्छया सर्वं कर्तुमकर्तु सर्वभूतान्तरात्मा सर्वान्तर्यामी एक बीज अव्यक्ततत्वम् बहुधा

महदादिरूपेण विश्वप्रपञ्चम् यःकरोति योविस्तारयति । तम् परमात्मानम् आत्मस्थस्वान्तर्यामिणम् स्वसन्निधिवर्तमान ये धीराः धैर्यशालिन. अनुपश्यन्ति तेषामेव शाश्वतम सुखम् इतरेषाम् सुखम् अर्थात् ईश्वरं दूरस्थं तद्रहितम् जगत् मन्यमानानाय दुःखमेव ।

हिन्दी शब्दार्थ—सर्वभूतान्तरात्मा = सभी प्राणियो मे विद्यमान परमात्मा । वशी = सब प्राणियो को अधीनस्थ रखने वाला । एकः = जीवात्मा । यः = जो । एक रूप = एक निज रूप को । बहुधा = अनेक प्रकार का । करोति = प्रगट करता है । तम् = उस । आत्मस्थम् = स्व-स्वरूप में विद्यमान को । ये धीरा. = जो धीर लोग । अनुपश्यन्ति = साक्षात्कार करते है । तेषाम् = उन्ही को । शाश्वतम् सुखम् = स्थायी मोक्षरूपी सुख मिलता है । इतरेषाम् न = अनात्मवादी अन्य जनो को नही ।

भावार्थ—सभी प्राणियो का नियामक परमात्मा एक होते हुए भी अपने को अनेक शक्तियो मे व्यक्त करता है । इस परमतत्त्व का जो विवेकी विद्वान् साक्षात्कार कर लेते है उन्ही को नित्य सुख मिलता है, अन्य अज्ञानावृत्त लोगो को (कभा) नही ।

12. The same controller and dweller in all the livings. Soul transfer himself into man only who feels this soul within himself, take real enjoyment and not others

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तस्मात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् १३

पदच्छेद—नित्य , अनित्यानाम्, चेतनः, चेतनानाम्, एक बहूनाम्, यः, विदधाति कामान् । तम्, आत्मस्थम्, ये, अनुपश्यन्ति, धीरा , तेषाम्, शान्तिः शाश्वती, न, इतरेषाम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—अनित्याना नित्य. चेतनाना चेतनः य. एकः बहूना कामान् विदधाति त ये धीराः आत्मस्थ अनुपश्यन्ति तेषा शाश्वती शान्ति (भवति) इतरेषा न (भवति) ।

[शा०] नित्योऽविनाश्यनित्याना विनाशिनाम् । चेतनश्चेतनाना चेतयितृणा ब्रह्मादीना प्राणिनामग्निनिमित्तमिव दाहकत्वमनग्नीनामुदका-

दीनामात्मचैतन्यनिमित्तमेव चेतयितृत्वमन्येषाम्, किच स सर्वज्ञ सर्वेश्वरः कामिना ससारिणा कर्मानुरूप कामान्कर्मफलानि स्वानुग्रहनिमित्ताश्च कामान्य एको बहूनामनेकेषामनायासेन विदधाति प्रयच्छतीत्येतत्। तामात्मस्थ येऽनु पश्यन्ति धीरास्तेपा शान्तिरूप रति शाश्वती नित्या स्वात्मभूतैव स्यान्नेतरेपामनेवविधानम् ॥

सस्कृत व्याख्या—अनित्यानाम् अचेतनप्रकृतीना मध्ये तिष्ठन्नपि चेतन एक एव, एकस्वरूप एव, तादृशाना बहूना चेतनाना परमात्मरूपेण चेतन एक अद्वितीय तेषा कामान् अपेक्षितान् अर्थात् यो विदधाति पूरयति । तम् आत्मस्थं ये धीराः अनुपश्यन्ति तेषा शाश्वती शान्तिः न इतरेषाम् ।

हिन्दी शब्दार्थ—यः = जो । एकः = अद्वितीय । अनित्यानाम् = नाशवान् पदार्थों में । नित्यः–अपरिवर्तनशील । चेतनाना चेतन = चेतन प्रतीत होने वाले मन-बुद्धि आदि अन्त.करण को भी प्रेरणा देने वाले । बहूनाम् = अनक लोगो के । कामान् = अभीष्ट पदार्थों को । विदधाति = सृजन करता है ।

भावार्थ—विनाशशील पदार्थो में भी जो एकमात्र अविनाशी है जो ब्रह्मादि देवो का प्रेरक है एव बाह्य तथा अन्तःकरण की कामनाओ को पूरा करने वाले आत्मस्थ परमतत्त्व को जो अपने मे देखते है उन्ही को स्थायी शान्ति मिलती है, औरो को नही ।

13. Only those get everlasting peace and not others who consider him within themselves and who is eternal among non-eternals, the consciousness among the conscious and who is though out pacify the many.

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥ १४ ॥

पदच्छेद—तत्, एतद्, इति, मन्यन्ते, अनिर्देश्यम् परमम् सुखम् । कथम्, नु, तद्, विजानीयाम्, किम्, उ, भाति, विभाति, वा ॥ १४ ॥

अन्वय—अनिर्देश्य परमं सुख 'तत् एतत्' इति मन्यन्ते । तत् कथं नु विजानीयम् ? किम् उ (तत्) भाति विभाति वा ।

[शा०] यत्तदात्मविज्ञानं सुखमनिर्देश्य निर्देष्टुमशक्यं परम प्रकृष्टं प्राकृतपुरुषं वाड्मनसयोरगोचरमपि सन्निवृत्तैषणा ये ब्राह्मणास्ते यत्तदेत-त्प्रत्यक्षमेवेति मन्यन्ते। कथं नु केन प्रकारेण तत्सुखमहं विजानीयाम् इदमित्यात्मबुद्धिविषयमापादयेय यथा निवृत्तैषणा यतय किमु तद्भाति दीप्यते प्रकाशात्मक तद्यतोऽस्मद्बुद्धिगोचरत्वेन विभाति विस्पष्ट दृश्यते किं वा नेति।

सस्कृत व्याख्या—तत् अलौकिकम् एतद् पूर्वंन कथितम्, अनिर्देश्यम् सर्वथा इदमित्थतया निर्देष्टुमयोग्यम् परम सुखम् अत्यन्तानन्दस्वरूपम् श्रुत्यभि-हतम् ब्रह्म मन्यन्ते भवादृशा ज्ञानिन एव जानन्ति। कथ तत् रूपादिहीन ब्रह्म-ग्रहणोऽसमर्थचेता अह विजानीयाम् ज्ञातुं शक्नुयाम् यत् तद् ब्रह्म भाति प्रकाशमत्तया भामते सुस्पष्टं भासते यद्वा तेजोऽन्तराभिभूतया न विभाति इत्याह बिभातिवेति।

हिन्दी शब्दार्थ—तत् = वह। एतत् = यही है। अनिर्देश्यम् = अवर्ण-नीय। परमं सुखम् = सर्वोत्कृष्ट आनन्द। इति = इस प्रकार। मन्यन्ते = (विवेकी) लोग स्वीकार करते है। कथ नु = किस प्रकार। तद् = उस अनिर्वचनीय सुख को। विजानीयाम् = मैं जानूं। किमु भाति = क्या वह (परमतत्त्व) स्वय प्रकाशित होता है। वा = अथवा। विभाति = अन्य पदार्थो मे प्रतिभासित होता है।

भावार्थ—आत्मविज्ञान को अधिक स्पष्ट करने के विचार से ग्रन्थकार ने जिज्ञासु व्यक्ति के मन मे एक प्रश्न जागरित किया है। क्या वह परमतत्त्व (परमात्मा) ससारिक अन्य पदार्थो की तरह अपने स्वरूप मे व्यक्त होता है या अपने प्रभाव से अन्य पदार्थो को भी प्रकाशित करता है? इसी शका के समाधान मे ही 'अनिर्देश्य'—पद द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि वह निज रूप मे भासित नही होता, अपितु विवेकी जन उसका साक्षात्कार करते है।

परमानन्द तत्त्व अनिर्देश्य है अर्थात् 'वह यह है ऐसा विद्वान् स्वीकार करते है'। उसे मैं (नचिकेता) कैसे जानूंगा कि वह परमतत्त्व व्यक्त होता है या व्यक्त नही होता? इसी का उत्तर आगे के श्लोक मे दिया गया है।

14. The intelligent people realise that the supreme and indesirable great happiness is this only How then shall I know it? Does it shine plainly or does it not?

**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१५॥**

पदच्छेद—न, तत्र, सूर्य. भाति, न, चन्द्रतारकम्, न, इमा, विद्युत., भान्ति, कुतः अयम्, अग्नि तम्, एव, भान्तम्, अनुभाति, सर्वम्, तस्य भासा, सर्वम्, इदम्, विभाति ॥ १५ ॥

अन्वय—तत्र सूर्य न भाति चन्द्रतारकं न (भाति), इमाः विद्युत. न भान्ति, अयम् अग्नि कुत ? तम् एव भान्तं सर्वम् अनुभाति, तस्य भासा इदं सर्वं विभाति ।

[शा०] न तत्र तस्मिन्स्वात्माभूते ब्रह्मणि सर्वविभासकोऽपि सूर्यो भाति तद्ब्रह्म न प्रकाशयतीत्यर्थः। तथा न चन्द्रतारक नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमस्मद्दृष्टिगोचर अग्नि । कि बहुना यदिदमादिक सर्वं भाति तत्तमेव परमेश्वर भान्त दीप्यमानमनुभात्यनुदीप्यते । यथा जलोल्मुकाद्यग्निसयोगादग्नि दहन्तमनुदहति न स्वतस्तद्वत्तस्यैव भासा दीप्त्या सर्वमिद सूर्यादि विभाति। यत एव तदेव ब्रह्म भाति च विभाति च। कार्यगतेन विविधेन भासा तस्य ब्रह्मणो भारूपत्व स्वतोऽवगम्यते । न हि स्वतोऽविद्यमान भासनमन्यस्य कर्तुं शक्यम् । घटादीनाम् अन्यावभासकत्वादर्शनाद्भासनरूपाणा चादित्यादीना तद्दर्शनात् ॥

संस्कृत व्याख्या—आदित्यवर्णं तमस परस्तात्, इत्युक्तप्रकारेण सर्वातिशयमानिति उच्यते—न तत्र सूर्यो भाति सर्वतेजसाम् आच्छादकत्वात्, अङ्गुष्ठप्रमितस्य ज्योतिर्मयस्य ब्रह्मणासन्निकाशेन सूर्यो भाति (प्रकाशते) न चन्द्रादितारका. प्रकाशन्ते, न चरमाः दृश्यमानाः विद्युतः प्रकाशते, तत्र अग्नि. कुत. प्रकाशितु शक्नोति इति । तस्य भासा ज्योतिषा सर्वमिद जगत् विभाति प्रकाशते सर्वज्योतिष कारणाभूतत्वात् । अनुभाति इति अनु शब्देन कार्यकारणभाव जगद्ब्रह्मणोर्दर्शितः । तमेव भान्तम् सर्व पश्चात् अनुभाति इति तस्यैव भासाप्रकाशेन इदम् सर्वं विभाति प्रकाशते ।

हिन्दी शब्दार्थ—तत्र = वहाँ (उस आत्मा को)। सूर्यः=सूर्य (प्रकाश) । न भाति = प्रकाशित नही करता । चन्द्रतारकम् न = चन्द्र और तारे भी नही । अयं अग्नि = यह अग्नि । कुत. = कैसे प्रकाशित कर सकता है। भान्तम् =

प्रकाशशील। तम् = उस आत्मा के। अनु = पीछे (उसके प्रकाश से)। सर्वम् एव = सभी पदार्थ। भाति = प्रकाशित है। इदम् सर्वम् = यह सभी सूर्य-चन्द्रादि। तस्य भासा = उस आत्मा के तेज से। विभाति = प्रकाशित होता है।

भावार्थ—उपर्युक्त श्लोक (१४) के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है कि परमात्मा भासित और प्रतिभासित होता है जब कि अन्य पदार्थों में एक ही गुण है।

वहाँ (परमात्मा के यहाँ)सूर्य, चन्द्र, तारागण प्रकाशित नही होते तथा विद्युत समूह भी प्रकाशित नही होता। अग्नि की तो बात ही क्या है। उसी परमानन्द के प्रकाश से सभी पदार्थ भासित होते है अर्थात् उसी के प्रकाशित होने के बाद ही उसी की दीप्ति से सभी पदार्थ (चन्द्रादि) दीप्तिमान होते है।

15. There (In Atmaloke) the sun does not shine, neither the stars and the flashes of lightning shine. How can this fire ? But the fact is this that when it shines everything shines after that and all these are illuminated by its own light.

द्वितीयाध्याये द्वितीय वल्ली समाप्ता।

●

तृतीया वल्ली

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वैतत् ॥१॥

पदच्छेद—ऊर्ध्वमूलः, अवाक्, शाखः, एषः, अश्वत्थः, सनातनः । तद्, एव, शुक्रम्, तद्, ब्रह्म, तद्, एव, अमृतम्, उच्यते । तस्मिन्, लोकाः, श्रिताः, सर्वे, तद्, उ, न, अत्येति कश्चन, एतद्, वैतत् ।

अन्वयः—ऊर्ध्वमूलः अवाक्शाख एषः अश्वत्थः सनातनः तत् एव शुक्रम् तत् ब्रह्म तत् एव अमृतम् उच्यते सर्वे लोकाः तस्मिन् श्रिता तत् उ कश्चन न अत्येति ।

[शा०] ऊर्ध्वमूल ऊर्ध्वं मूलं यत्तद्विष्णो परमं पदमस्येति सोऽयमव्यक्तादिस्थावरान्त. संसारवृक्ष ऊर्ध्वमूल । वृक्षश्च व्रश्चनात् । जन्मजरामरणशोकाद्यनेकानर्थात्मकः प्रतिक्षणमन्यथास्वभावो मायामरीच्युदकगन्धर्वनगरादिवद्दृष्टनष्टस्वरूपत्वादवसाने च वृक्षवदभावात्मक कदलीस्तम्भवन्नि सारोऽनेकशतपाखण्डबुद्धिविकल्पास्पदस्तत्त्वविजिज्ञासुभि निर्धारितेद तत्त्वो वेदान्तनिर्धारितपरब्रह्ममूलसारोऽविद्याकामकर्माव्यक्तबीजप्रभवोऽपरब्रह्मविज्ञानक्रियाशक्तिद्वयात्मकहिरण्यगर्भाङ्कुर. सर्वप्राणिलिङ्गभेदस्कन्धतृष्णाजलावसेकोद्भूतदर्पो बुद्धीन्द्रियविषयप्रवालाङ्कुरः श्रुतिस्मृतिन्यायविद्योपदेशपलाशो यज्ञदानतप आद्यनेकक्रियासुपुष्प सुखदु खवेदनानेकरस. प्राण्युपजीव्यानन्तफलस्तत्तृष्णासलिलावसेकप्ररूढजडीकृतदृढबद्धमूल सत्यनामादिसप्तलोकब्रह्मादिभूतपक्षिकृतनीड. प्राणिसुखदु.खोद्भूतहर्षशोकजातनृत्यगीतवादित्रक्ष्वेलितास्फोटितहसिताक्रुष्टरुदितहाहामुञ्चमुञ्चेत्याद्यनेकशब्दकृततुमुलीभूतमहारवो वेदान्तविहितब्रह्मात्मदर्शनासङ्गशस्त्रकृतोच्छेद एष ससारवृक्षोऽश्वत्थोऽश्वत्थवत्कामकर्मवातेरितनित्य-

प्रचलितस्वभाव:, स्वर्गनरकतिर्यक्प्रेतादिभि: शाखाभिरवाक्शाख', सनातनोऽनादित्वाच्चिर प्रवृत्त ।

यदस्य ससारवृक्षस्यमूल तदेव शुक्र शुभ्र शुद्ध ज्योतिष्मच्चैतन्यात्मज्योति स्वभाव तदेव ब्रह्म सर्वमहत्त्वात् । तदेवामृतमविनाशस्वभावमुच्यते कथ्यते सत्यत्वात् । वाचारम्भण विकारो नामधेयमनृतमन्यदतो मर्त्यम् । तस्मिन्परमार्थसत्ये ब्रह्मणि लोका गन्धर्वनगरमरीच्युदकमायासमा परमार्थदर्शनाभावावगमना श्रिता आश्रिता सर्वे समस्ता उत्पत्तिस्थितिलयेषु । तदु तद्ब्रह्म नात्येति नातिवर्तते मृदादिकमिव घटादिकार्यं कश्चदपि विकार । एतद्वै तत् ।

संस्कृत व्याख्या—ऊर्ध्वमूलमध: शाखा इत्यादि गीतोक्त-व्याख्यानस्य मूल श्रुतिरुच्यते-ऊर्ध्व मूल –ऊर्ध्वं मूल यस्यास्य संसाराख्य वृक्षस्य ऊर्ध्वं–सप्तलोकोपरिस्थितस्यचतुर्मुखस्यैव मूलत्वमाहु: अत ऊर्ध्वं मूल सिद्धम् अवाक्शाख. अवाक्-अधो देशे शाखा यस्य स अवाक्शाख'—अस्य शाखा च अधो देशे पृथिवीनिवासिसकल-मनुष्यपश्वादि स्थावरन्तजीवयोनय अत एष सनातनोऽश्वत्थ: वृक्ष । एतल्लक्षणमेव ब्रह्मेति दर्शयति ।

हिन्दी शब्दार्थ—ऊर्ध्वमूल' = ऊपर मूल वाला । अवाक्शाख: = नीचे की ओर शाखाओ वाला । एष = यह । सनातन: = प्राचीन । अश्वत्थ: = पीपल का वृक्ष । तत एव = वही । शुक्रम् = निर्मल । तद् ब्रह्म = वही महान् आत्मा । तद् एव = वही । अमृतम् = अविनाशी । उच्यते = कहा जाता है । तस्मिन् = उसी आत्मा पर । सर्वे लोका = सभी चन्द्रादि लोक । श्रिता. = आश्रित है । तद् उ = और उसे । कश्चन = कोई भी । न अत्येति = अतिक्रमण नही करता । एतद् वै तद् = यही वह आत्मा (ब्रह्म) है ।

भावार्थ—यह ससार रूपी पीपल का वृक्ष बडा ही विलक्षण है । इसकी जड ऊपर की ओर तथा शाखाएँ नीचे को ओर है । वही (मूल) शुद्ध ज्योतिस्वरूप, वही ब्रह्म और वही अमृत है । सभी लोग उसी ब्रह्म पर निर्भर है । उसके ऊपर कोई नही । निश्चय ही ऐसे गुणो वाला ब्रह्म है ।

विशेष—यहाँ आत्मा के शरीर ग्रहण को वृक्ष रूपक द्वारा स्पष्ट किया गया है । शरीर या ससार को अश्वत्थ कहना बडा ही युक्तिसगत है, क्यो कि 'न श्व:

स्थास्यति' अर्थात् जो कल रहनेवाला नही। अश्वत्थ (पीपल) भी जिसके पत्ते थोडी सी प्रतिकूल हवा से इधर-उधर चलायमान हो जाते है और जो सुदृढ मूल के अभाव मे उखड जाता है। शरीर भी अस्थिर होने के कारण थोडी सी विपरीत दशा में नष्ट हो जाता है और इसकी हाथ-पैर रूपी शाखाएँ भी अधोमुखी है अर्थात् पतनशील है। दूसरी ओर इस वृक्ष के मूल (ब्रह्म) को चेतन, शुद्धस्वरूपादि गुणो के कारण सभी लोको का आधार कहा है। शरीर मे भी चेतन सस्थान (मस्तिष्क) ऊपर ही रहता है। इन्द्रियाँ आत्मा के अधीन है उसके ऊपर नही। अत' इसी आत्मतत्त्व की ही उपासना करना उचित है।

1. This Peepal tree of eternity has its roots above in heaven and branches down on earth. That is Brahman, that is pure and that is called realy immortal Only on that all the worlds rest and none can surpass him.

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ २ ॥

पदच्छेद—यद्, इदम्, किञ्च, जगत् सर्वम्, प्राणे, एजति, निसृनम्। महद्, भयम्, वज्रम्, उद्यतम् य., एतद्, विदु:, अमृता ते, भवन्ति।

अन्वय – यत् किं च जगत् इद सर्वं नि सृतं प्राणे एजति। उद्यत वज्रं (इव) महत् भयम्। ये एतत् विदु' ते अमृता: भवन्ति।

[शा०] यदिद किंच यत्किंचेद जगत्सर्वं प्राणे परस्मिन्ब्रह्मणि सत्येजति कम्पते तत एव नि सृतं निर्गत सत्प्रचलति नियमेन चेष्टते। यदेव जगदुत्पत्त्यादिकारण ब्रह्म तन्महद्भयम्। महच्च तद्भय च बिभेत्यस्मादिति महद्भयम्, वज्रमुद्यतमुद्यतमिव वज्रम्। यथा वज्रोद्यतकरं स्वामिनमभिमुखीभूत दृष्ट्वा भृत्या नियमेन तच्छासने वर्तन्ते तथेद चन्द्रादित्यग्रहनक्षत्रतारकादिलक्षण जगत्सेश्वरं नियमेन क्षणमप्यविश्रान्तं वर्तत इत्युक्त भवति। ये एतद्विदु स्वात्मप्रवृत्तिसाक्षिभूतमेक ब्रह्मामृता अमरणधर्माणस्ते भवन्ति।

सस्कृत व्याख्या—यदिदम् पुरोदृश्यमान जगत्सर्वम्, अस्मिन् अङ्गुष्ठमात्रे प्राणे प्राणशब्द अभिधेये स्थितम् सर्वम्, नि.सृतम्—तस्मादुत्पन्नं महाभयनिमित्तम्,

एजनं-कम्पनम्-श्रूयते इतितात्पर्यम्, तच्छासनातिक्रमणे किं भविष्यतीति उच्यते उद्यत वज्रमिव उद्यतात् आरोपिताद् वज्रादिवेति पञ्चम्यर्थे प्रथमाविभक्तिः छान्दसव्यत्ययात् महद्भयम् यथेति भावः अत्र प्राण शब्द परब्रह्मवाचकः बिभेत्यस्मात्तद्भयम भयानकमित्यर्थः। महाभयानक वज्रवत् स्वस्माद् निःसृतं सकलं जगत् प्राणशब्दवाच्य परमात्मा कम्पयति, इतितत्वम्। ये एतद्-परमात्मनो जगतः पृथक् रूपेणानुभवन्ति-अमृतास्ते भवन्तीत्यर्थः। कृतार्थता सम्पद्यते इत्यर्थः।

हिन्दी शब्दार्थ—यत् इद किंच = यह जो कुछ। सर्वं जगत् = सम्पूर्ण ससार। प्राणे एजति = आत्मा के चलायमान होते ही। निःसृतम् = चलायमान होता है। तत् उद्यत वज्र इव महत् भयम् = वह ब्रह्म उठे हुए महान् भय रूप वज्र के सदृश है। एतत् ये = इसे जो। विदुः = जानते है। ते अमृताः भवन्ति = वे ज्ञानी पुरुष अमर हो जाते है।

भावार्थ—यह जो कुछ भी विश्व है, उसी प्राणभूत ब्रह्म से उत्पन्न होकर गतिशील होता है। जो विवेकी जन इसे भयोत्पादक वज्र के सदृश जानते है वे अजर-अमर हो जाते है। कहने का तात्पर्य स्पष्ट है कि आत्मा ही प्राण रूप में सभी शक्तियो का आधार है। इसी गति से सब गतिवान है और इसकी स्थिरता से सभी काम-काज ठप पड जाता है।

2 This whole world comes forth and moves because there is the Brahman He is an extreme fear like a raise thunder bolt Those who realise so become immortal

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३ ॥

पदच्छेद—भयात्, अस्य, अग्निः, तपति, भयात् तपति, सूर्य। भयाद् इन्द्रश्च, वायु च, मृत्युः धावति पञ्चम इति।

अन्वयः—अस्य भयात् अग्निः तपति, (अस्य) भयात् सूर्यः तपति। (अस्य) भयात् इन्द्रश्च वायुश्च पञ्चम मृत्युः धावति।

(शा) भयाद्भीत्या परमेश्वरस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यो भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चम.। न हीश्वराणा लोकपालाना समर्थाना

सता नियन्ता चेद्वज्रोद्यतकरवन्न स्यात्स्वामिभयभीतानामिव भृत्यानां नियता प्रवृत्तिरुपपद्यते ।

संस्कृत व्याख्या—अस्य शास्तु परमात्मनो भयाद् अग्निः तपति-ज्वलति, सूर्यश्च तद् भयादेव तपति, तद्भयाद् इन्द्रः वायुः मृत्युः धावति-स्वस्वव्यापारे प्रवर्तते, तच्छासन शिरसाऽनुपालयति, इत्यर्थः ।

हिन्दी शब्दार्थ—अस्य भयात् = इसी के भय से । अग्निः तपति = आग जलती है । सूर्यः तपति = सूर्य प्रकाशित होता है । इन्द्रश्च वायुश्च = इन्द्र और वायु गतिशील होते है । पञ्चम. मृत्युः धावति = पाचवाँ (अग्नि-सूर्य-इन्द्र-वायु) के अतिरिक्त मृत्यु भी उसी (आत्मा) के नियन्त्रण में है ।

भावार्थ —आत्मा के भय से ही अग्नि (उदानवायु), इसी के भय से सूर्य (प्राणवायु), इन्द्र (मन), वायु (व्यानवायु) एवं पाचवा मृत्यु भी अधीनस्थ होकर कार्यरत रहते है। यहाँ प्राण का अर्थ ब्रह्म मानकर भगवान शंकराचार्य ने अग्नि, सूर्य, इन्द्र, वायु, और मृत्यु को भी अग्निस्वरूप स्वीकार किया है ।

3 From fear of him fire burns, from fear of Him the sun shines and from fear of Him Indra, Vayu and the fifth Death do their own works.

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥

पदच्छेद—इह, चेत् अशकद्, बोद्धुम्, प्राक्, शरीरस्य, विस्रस । ततः सर्गेषु, लोकेषु, शरीरत्वाय कल्पते ।

अन्वय—इह चेत् शरीरस्य विस्रस प्राक् बोद्धुम् अशकत् (तदा मुक्तो भवति) ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ।

[शा०] इह जीवन्नेव चेद्यद्यशक्नोति शक्त सञ्ज्ञानात्येतद्भयकारणं ब्रह्म बोद्धुमवगन्तु प्राक्पूर्व शरीरस्य विस्रसोऽवस्रसनात्पतनात्संसारबन्ध-नाद्विमुच्यते। न चेदशकद्बोद्धु तत अनवबोधात्सर्गेषु सृज्यन्ते येषु स्रष्टव्याः प्राणिन इति सर्गा पृथिव्यादयो लोकास्तेषु सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय शरीरभावाय कल्पते समर्थो भवति शरीर गृह्णातीत्यर्थः । तस्माच्छरीर-विस्रसनात्प्रागात्मबोधाय यत्न आस्थेयः ।

सस्कृत व्याख्या—इह–अस्मिन् संसारे शरीरस्य विस्रसः–विस्रमनात्–पतनात्–प्राक् बोद्धुम्–ब्रह्मज्ञातु अशकत्–अशक्नुवान् चेत् अत्र छान्दसविकरण-व्यत्ययो ज्ञेय.। तत –तस्माद् हेतो (ज्ञानाभावाद्) सर्गेषु लोकेषु–सृज्यमान सर्व-लोकेषु शरीरत्वाय–जन्मजरामरणादिलक्षणासमृति कल्पते–प्राप्नोति ।

हिन्दी शब्दार्थ —इह = समार मे । शरीरस्य = शरीर के । विस्रम.प्राक् = विनाश के पहले । चेत् = यदि । बोद्धु अशकत् = जानने मे समर्थ । तत = इसके बाद । सर्गेपु लोकेपु = लोक-लोकान्तरो मे । शरीरत्वाय = बारम्बार शरीर ग्रहण के लिये । कल्पते = समर्थ होता है ।

भावार्थ—शरीरान्त के पूर्व ही आत्मबोध करनेवाला व्यक्ति समार के आवागमन (८४ लाख योनी) से छुटकारा पा जाता है, अन्यथा उसे बार बार शरोर धारण करना पडता है ।

4 If one gets success in knowing that Brahman here in this world before decaying of the body, one becomes free from the bondage of the world otherwise entangles in the creation again and again.

यथादर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके।
यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥५॥

पदच्छेद—यथा, आदर्शे, तथा, आत्मनि, यथा, स्वप्ने, तथा, पितृलोके, यथा, अप्सु, परि इव, ददृशे, तथा, गन्धर्वलोके, छायातपयो', इव, ब्रह्मलोके ।

अन्वय—यथा आदर्शे तथा आत्मनि, यथा स्वप्ने तथा पितृलोके, यथा अप्सु तथा गन्धर्वलोके परिददृशे इव ब्रह्म लोके छायातपयो इव ।

[शा०] यथादर्शे प्रतिबिम्बभूतमात्मानं पश्यति लोकेऽत्यन्तविविक्तं तथेहात्मनि स्वबुद्धौ आदर्शवन्निर्मलीभूतायां विविक्तमात्मनो दर्शन भवतीत्यर्थः। यथा स्वप्नेऽविविक्त जाग्रद्वासनोद्भूतं तथा पितृलोकेऽविविक्तमेव दर्शनमात्मन· कर्मफलोपभोगासक्तत्वात्। यथा चाप्सु अविभक्तावयवमात्मरूपं परीव ददृशे परिदृश्यत इव तथा गन्धर्वलोकेऽविविक्तमेव दर्शनमात्मन.। एवं च लोकान्तरेष्वपि शास्त्रप्रामाण्यादवगयते। छायातपयोरिवात्यन्त-

विविक्त ब्रह्मलोक एवैकस्मिन् । स च दुष्प्रापोऽत्यन्तविशिष्टकर्मज्ञानसाध्यत्वात् । तस्मादात्मदर्शनायेहैव यत्नः कर्तव्य इत्यभिप्रायः ।

संस्कृत व्याख्या—आत्मनो दुर्बोधत्वमुच्यते–यथा आदर्शे–दर्पणे प्रतीयमानं वस्तु–साक्षाद्दृष्टवस्तुवत् प्रतिकूलमुखत्वाद् सम्यक्तया नोपलभ्यते । तथा आत्माऽपि सम्यक् नावबुध्यते । एव लोकान्तरविषयेऽपि आह–यथा स्वप्ने–स्वप्नदर्शनस्य जाग्रद्दर्शनवत् न सम्यक्तया, अव-बोधोभवति तथा पितृलोके (अर्थात् कर्मणि-एव व्यापृतात्मनि परमात्मनोऽन्यथा प्रतीतिर्भवति) । यथा अप्सु–जलान्तर्गत वस्तुनो बहिर्वर्तमानवत् न सम्यक् परिददृशे–न स्पष्टतया परितो दृश्यते तथा गन्धर्वलोके आपातत भवतीत्यर्थः । छायातपयो —उभयोर्मिश्रणे शुद्धातपवति पदार्थवत् नावबुध्यते तथा ब्रह्मलोके न सम्यग् उपलभ्यते अतो ब्रह्मलोकपर्यन्तं दुरधिगमनात्मतत्वमिति भावः ।

हिन्दी शब्दार्थ—यथा आदर्शे = जैसे स्वच्छ दर्पण मे । तथा आत्मनि = उसी प्रकार अन्तःकरण में । यथा स्वप्ने = जैसे स्वप्नावस्था मे । तथा पितृलोके = उसी तरह संसार-प्रपच मे । यथा अप्सु = जैसे जल मे । परि इव = फैले हुए के समान । ददृशे = दिखाई पडता है । गन्धर्वलोके = गन्धर्व लोक मे । छायातपयोः इव = छाया और धूप की तरह । ब्रह्मलोके = ब्रह्म लोक में ।

भावार्थ—दर्पण मे जैसी मुखाकृति दिखाई देती है उसी प्रकार बुद्धि में भी आत्मा दृष्टिगोचर होता है । स्वप्नावस्था मे जैसे अज्ञानी व्यक्ति को जाग्रत अवस्था के संस्कार सत्य प्रतीत होते है उसी प्रकार पितृलोक मे जलमे भी पडी प्रतिच्छाया के समान, स्तुतिपरक गन्धर्व लोक में आत्मा के अस्पष्ट ए व सदिग्ध दर्शन होते है । केवल ब्रह्मलोक में ही छाया और धूप के समान आत्मा और अनात्मा का सम्यक् ज्ञान होता है ।

विशेष —ससार जाल में फँसा व्यक्ति संसारिक लोगो द्वारा माने गये रूप को यदि अपना वास्तविक रूप मानता है तो उसकी यह मान्यता स्वप्न में देखे हुए विश्व को यथार्थ मानने के समान है । वस्तुतः गन्धर्व लोक के समान प्रशसकों द्वारा रचित यशोगान जल में पडी रेखा के समान चंचल एवं अस्पष्ट है । आत्मा के वास्तविक स्वरूप का भान तो ब्रह्म लोक में ही सम्भव है जहाँ ज्ञान और अज्ञान, प्रकाश एवं अन्धकार के समान प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते है । अन्तःकरण के

अवस्थाभेद से और लौकिक अनुभव के भेद से यहाँ चार अवस्थाओं का वर्णन किया गया है। (१) दर्पण-बुद्धि, (२) स्वप्न-पितृलोक, (३) जल-गन्धर्व लोक, (४) आतप-छाया।

5 As an image is seen in a mirror, so Atman is seen in pure intellect, as in a dream so in the world of fore-fathers; as it is seen in water so in the world of Gandharvas and as it in the world Brahman like light and shade.

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानाना मत्वा धीरो न शोचति॥ ६॥

पदच्छेद—इन्द्रियाणाम्, पृथग्भावम्, उदयास्तमयौ, च, यत्। पृथग्-उत्पद्यमानानाम्, मत्वा, धीरो, न, शोचति।

अन्वय—पृथक् उत्पद्यमानानाम् इन्द्रियाणा यत् पृथग्भावम् उदयास्तमयौ, च यत् धीरः (एतद्) मत्वा न शोचति।

[शां०] इन्द्रियाणा श्रोत्रादीनां स्वस्वविषयग्रहणप्रयोजनेन स्वकारणेभ्य आकाशदिभ्य. पृथगुत्पद्यमानानामत्यन्तविशुद्धात्केवलाच्चिन्मात्रात्मस्वरूपात् पृथग्भावं स्वभावविलक्षणामकता तथा तेषामेवेन्द्रियाणमुदयास्तमयौ चोत्पत्तिप्रलयौ जाग्रत्स्वापावस्थापेक्षया नात्मन इति मत्वा ज्ञात्वा विवेकतो धीरो धीमान्न शाचति। आत्मनो नित्यैकस्वभावस्याव्यभिचाराच्छोककारणत्वानुपपत्ते। तथा च श्रुत्यन्तरम् 'तरति शोकमात्मवित्' (छा० ७।१।३) इति।

संस्कृत व्याख्या—पृथगुत्पद्यमानानाम्–पृथग्भूतानामुत्पद्यमानानामिन्द्रियाणाम्–देहादीनामपि ग्रहणम्, उदयास्तमयौ–उत्पादविनाशलक्षणौ च यत्–यौ इत्यर्थ पृथग्भावम्-परस्पर वैलक्षण्य लक्षणम् तान् सर्वान् स्वभावान्–इन्द्रियादिगतान् मत्वा–सम्यगवगम्य नतु आत्मगतम् इति बुद्ध्वा धीरो–विवेकिनः न शोचति (शोक तरति आत्मवित् त्युक्तत्वात्।

हिन्दी शब्दार्थ पृथक = आत्मा से भिन्न। उत्पद्यमानानाम = उत्पन्न होने वाले। इन्द्रियाणाम् = चक्षु-प्राणादि इन्द्रियों के। पृथक् भावम् च = और भौतिक इन्द्रियों से पृथक् भाव को। उदय अस्तमयौ = उत्पत्ति और प्रलय। यत् एतत्

मत्वा = जो यह जानकर (कार्य करता है) । धीर = विवेकी । न शोचति = शोक नही करता ।

भावार्थ— पृथक् पृथक् भूतो (आकाशादि) से उत्पन्न इन्द्रियो के अलग अलग भाव एव उनकी उत्पत्ति तथा विनाश को जो जान लेने पर विवेकी व्यक्ति शोक नही करता । तात्पर्य यह है जो व्यक्ति ऐन्द्रिक सुखो को ही वास्तविक सुख मानता है उसे अपार वेदना होती है और जो आत्मा को इन्द्रियो से पृथक् मानता है, उसे कोई कष्ट नही होता ।

6. The intelligent man realising the unlikeness of the senses that are produced seperately and also knowing their rise and fall grieves not at all

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥ ७ ॥
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥

पदच्छेद—इन्द्रियेभ्यः, परम्, मन, मनसः, सत्वम्, उत्तमम् । सत्वाद् अपि, महान् आत्मा, महत, अव्यक्तम्, उत्तमम् । अव्यक्तात्, तु, पर, पुरुष', व्यापकः, अलिङ्गः एव, च । य ज्ञात्वा, मुच्यते, जन्तुः अमृतत्वम् च गच्छति ।

अन्वयः—इन्द्रियेभ्यः मनः पर मनस. सत्त्वम् उत्तम सत्त्वात् अधि महान् आत्मा महत. अव्यक्तम् उत्तमम् । अव्यक्तात् तु व्यापकः अलिङ्ग एव च पुरुषः परः य ज्ञात्वा जन्तु' मुच्यते अमृतत्व च गच्छति ।

[शा०] इन्द्रियेभ्य पर मन इत्यादि । अर्थानामिहेन्द्रियसमानजातीयत्वादिन्द्रियग्रहणेनैव ग्रहणम् । पूर्ववदन्यत् । सत्त्वशब्दाद्बुद्धिरिहोच्यते ।

अव्यक्तात्तु पर पुरुषो व्यापको व्यापकस्याप्याकाशादे सर्वस्य कारणत्वात् । अलिङ्गो लिङ्ग्यते गम्यते येन तल्लिङ्ग बुद्ध्यादि तदविद्यमानमस्येति सोऽयमलिङ्ग एव । सर्वससारधर्मवर्जित इत्येतत् । य ज्ञात्वाऽऽचार्यतः शास्त्रतश्च मुच्यते जन्तुरविद्यादिहृदयग्रन्थिभिर्जीवन्नेव पतितेऽपि शरीरेऽमृतत्वं च गच्छति सोऽलिङ्गः परोव्यक्तात्पुरुष इति पूर्वेणैव सम्बन्ध ।

संस्कृत व्याख्या—इन्द्रियेभ्यः—अत्रेन्द्रियपदमर्थविशिष्टस्य वाचकम्—अन्यत्रेन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था इत्युक्तत्वात्, एवं चार्थविशिष्टेभ्य.-शब्दादि, विषय-विशिष्टेभ्य इन्द्रियेभ्यो मनः परमुत्कृष्टम, मनस सत्वम्-बुद्धिः परत्वम्, चात्र वशीकार्यत्वम्, तदेवोत्तमम्, सत्वाद्-बुद्धे, आत्मा महान्परः महत.-अव्यक्तम्, परम्, अव्यक्तात्-पुरुषः पर., स तु व्यापकः, स तु अलिङ्ग -किञ्चिल्लक्षणरहित एव, यमेव ज्ञात्वा जन्तुः -जीवात्मा, अमृतत्वम् च गच्छति ।

हिन्दी शब्दार्थ—इन्द्रियेभ्य. मनः परम् = इन्द्रियो से मन उत्तम (पृथक्) है । मनसः सत्वं उत्तमम् = मन से बुद्धि श्रेष्ठ है । सत्वात् महान् आत्मा = बुद्धि से आत्मा उत्तम है । महत अव्यक्तम् = महत् से त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति । अवि-उत्तमम् = उत्कृष्ट है ।

भावार्थ—इन्द्रियो की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है, मन की अपेक्षा बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धि की तुलना में आत्मा उत्तम है एव आत्मा से श्रेष्ठ प्रकृति उत्कृष्ट है । कहने का आशय स्पष्ट है कि आत्मा केवल इन्द्रियो से ही भिन्न नही है, अपितु मन, बुद्धि और मूल प्रकृति से भी भिन्न है ।

विशेष'—उपनिषद्कार ने इस मन्त्र मे आत्मा के सम्बन्ध मे आस्तिक-नास्तिक दर्शनो में प्रचलित शरीरात्मवाद, इन्द्रियात्मवाद आदि से ऊपर उठ कर परब्रह्म त्रिगुणातीत पुरुष को आत्मा की मान्यता दी है ।

हिन्दी शब्दार्थ—अव्यक्तात् = प्रकृति से । अलिङ्ग. = निर्गुण । व्यापकः = सब पदार्थों मे व्यापक । पुरुष' = आत्मा । परः = उत्कृष्ट हैं । य ज्ञात्वा = जिसको जान लेने पर । जन्तुः = प्राणी । मुच्यते अमृतत्वम् च गच्छति = जन्म-मरण से छूट जाता है और अमरत्व को प्राप्त कर लेता है ।

भावार्थ—निर्गुण सर्वव्यापी परमात्मा प्रकृति से भो परे है जिसको जानकर जीव बन्धनमुक्त हो जाता है और अमरत्व को प्राप्त कर लेता है ।

7. Mind is higher than senses, the intellect is higher than the mind, Atman is higher than the intellect, and the manifested (The Prakriti) is higher than the Atman

8. And the supreme Purush is higher than the un mani fested (Prakriti). He is pervasive and he has no worldly

attributes By knowing him every one becomes free and gets immortality

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषी मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ९ ॥

पदच्छेद—न, सदृशे, तिष्ठति, रूपम्, अस्य, न चक्षुषा, पश्यति, कश्चन, एनम्, हृदा, मनीषा, मनसा, अभिक्लृप्तः, य', एतद्, विदुः अमृता. ते भवन्ति ।

अन्वय—अस्य रूप सदृशे न तिष्ठति कश्चन एन चक्षुषा न पश्यति । मनीषा हृदा मनसा अभिक्लृप्तः (आत्मा ज्ञातु शक्यते) । ये एतत् विदुः ते अमृताः भवन्ति ।

[शा०] न सदृशे सदर्शनविषये न तिष्ठति प्रत्यगात्मनोऽस्य रूपम् । अतो न चक्षुषा सर्वेन्द्रियेण, चक्षुग्रहणस्योपलक्षणार्थत्वात्, पश्यति नोपलभते कश्चन कश्चिदप्येनन प्रकृतमात्मानम् । कथ तर्हि त पश्येदित्युच्यते । हृदा हृत्स्थया बुद्धया । मनीषा मनस. सङ्कल्पादिरूपस्येष्टे नियन्तृत्वेनेति मनीट् तया हृदा मनीषा विकल्पयित्र्या मनसा मननरूपेण सम्यग्दर्शनेन अभिक्लृप्तोऽभिसमर्थितोऽभिप्रकाशित इत्येतत् । आत्मा ज्ञातु शक्यत इति वाक्यशेषः । तमात्मान ब्रह्मैतद्ये विदुरमृतास्ते भवन्ति ।

संस्कृत व्याख्या—अस्य- व्यापकस्य परमात्मनः रूपम्--स्वरूपम् व्यापकत्वादेव न सदृशे--संदर्शनविषयतया न तिष्ठति, न च कश्चन, एनम् चक्षुषा पश्यति--अवलोकयति । किन्तु हृदा--आर्द्रहृदयेन--भक्त्येत्यर्थ. मनीषाधृति--धृत्येत्यर्थ' मनसा च अभिक्लृप्त --अभिमुखी भवति, ये, एतद् विदुः ते अमृता --जन्मजरामरणादिविमुक्ता भवन्ति इत्यर्थ. ।

हिन्दी शब्दार्थ— अस्य रूपम् = इस आत्मा का स्वरूप । सन्दृशे न तिष्ठति = नेत्र श्रोत्रादिक इन्द्रियो के विषय मे नही ठहरता । एन कश्चन चक्षुषा न पश्यति = इस आत्मा को कोई नेत्र आदि से प्रत्यक्ष नही कर सकता । हृदा मनीषा = हृदयस्थ बुद्धि से । मनसा = मनन से । अभिक्लृप्त. = प्रकाशित । एतत् ये विदु' = इसे जो जानते है । ते अमृताः भवन्ति = वे अमर हो जाते है ।

भावार्थ— प्रत्यक्ष का विषय न होने से कोई भी व्यक्ति इस आत्मतत्त्व को भौतिक चक्षु आदि से दृष्टिगत नही कर सकता । निर्विकल्प बुद्धि द्वारा निरन्तर

चिन्तन से ही यह अभिव्यक्त होता है । जो इसे अच्छी तरह जान लेते है वे मुक्त हो जाते है । तात्पर्य स्पस्ट है कि आत्मा के साक्षात्कार के लिये इन्द्रियो की नही, तत्त्व विवेचिनी बुद्धि की आवश्यकता है ।

9. His form is not an object of vision None can see Him with the eyes He is revealed by the insight of the intellect which lives in the heart and controlls the mind. One who knows this becomes immortal.

यदा पश्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥ १० ॥
तां योगमिति मन्यते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥ ११ ॥

पदच्छेद—यदा, पञ्च, अवतिष्ठन्ते, ज्ञानानि, मनसा, सह । बुद्धि, च, न, विचेष्टति, ताम्, आहुः, परमाम् गतिम् । ताम्, योगम्, इति, मन्यन्ते, स्थिराम्, इन्द्रियधारणाम् । अप्रमत्त तदा, भवति, योग., हि, प्रभवाप्ययौ ।

अन्वय—यदा पञ्च ज्ञानानि मनसा सह अवतिष्ठन्ते बुद्धिः च न विचेष्टति ता परमा गतिम् आहु । ता स्थिराम् इन्द्रियधारणा योगम् इति मन्यन्ते तदा अप्रमत्तः भवति हि योगः प्रभवाप्ययौ ।

[शा०] यदा यस्मिन्काले स्वविषयेभ्यो निवर्तितान्यात्मन्येव पञ्च ज्ञानानि-ज्ञानार्थत्वाच्छ्रोत्रादीनीन्द्रियाणि ज्ञानान्युच्यन्ते, अवतिष्ठन्ते सह मनसा यदनुगतानि तेन सल्पादिव्यावृत्तेनान्त करणेम, बुद्धिश्चाध्यवसायलक्षणा न विचेष्टति स्वव्यापारेषु न विचेष्टते न व्याप्रियते तामाहु परमा गतिम् ।

तामीदृशी तदवस्था योगमिति मन्यन्ते वियोगमेव सन्तम् । सर्वानर्थसंयोगवियोगलक्षणा हीयमवस्था योगिन । एतस्या ह्यवस्थायामविद्याध्यारोवणवर्जितस्वरूपप्रतिष्ठ आत्मा । स्थिरामिन्द्रियधारणा स्थिरामचलामिन्द्रियधारणा बाह्यान्त करणानां धारणमित्यर्थं. । अप्रमत्तः प्रमादवर्जितः समाधानं प्रति नित्यं यत्नवांस्तदा तस्मिन्काले यदैव प्रवृत्तयोगो

भवतीनी साम्यर्थ्यादिवगम्यते। न हि बुद्धयादिचेष्टाभावे प्रमादसंभवोऽस्ति। तस्मात्प्रागेव बुद्धयादिचेष्टोपरप्रमादो विधीयते। अथवा यदैवेन्द्रियाणा स्थिरा धारणा तदानीमेव निरङ्कुशमप्रमत्तत्वमित्यतोभिधीयतेऽप्रमत्तस्तदा भवतीति। कुत ? योगो हि यस्मात्प्रभवाप्ययावुपजनापायधर्मक इत्यर्थो-ऽतोऽपायपरिहारायाप्रमादः कर्तव्य इत्यभिप्राय ।

सस्कृत व्याख्या—यदा – यत्र ज्ञानानि-ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानमिति व्युत्पत्या ज्ञानशब्दो इन्द्रिय पर, अतो यत्र सर्वाणीन्द्रियाणि मनसा सह मनयुक्तानि अवतिष्ठन्ते-न वाप्तुशक्नुवन्ति, ततः परापि बुद्धिरपि न यत्र विचेष्टते-चेष्टाविषय करोति; तामेव परमा गतिम–पदम् आहुर्मनीषिणः इति शेषः।

ताम्–पूर्वमन्त्रनिर्दिष्टाम् परमा गतिम् स्थिरमिन्द्रियधारणाम्–निश्चला-मिन्द्रियाणाम धारणाम (धारणाध्यानसमाधानमध्य प्रथमामवस्थाम्) अवष्टम्भन-मित्यर्थ, योगमिति मन्यन्ते, तथोक्तम् योगसूत्रे व्यासार्यै—परमागति. योगः, इति–तदा, जीवोऽप्रमत्तो भवति–इन्द्रियाणा निर्व्यापारत्वे हि अवहितचित्तता भवति। चित्तावधारणकिमर्थमित्याह योगोहि प्रभवाप्ययौ–उत्पत्तिविनाशलक्षणौ तद्धि इष्टप्रभवानिष्टाप्ययलक्षण सर्वपुरुषार्थसाधनत्वात्।

हिन्दी शब्दार्थ—यदा = जब। पञ्च ज्ञानानि = पाचो ज्ञानेन्द्रियाँ। मनसा सह = मन के साथ। अवतिष्ठन्ते = कार्य-विरत हो जाती है। बुद्धि च न विचेष्टति = बुद्धि भी मन को नियन्त्रित करनेकी चेष्टा नहीं करती। ता परमा गतिम् = उसे परम गति। आहु. = कहते है।

ताम् = उस। स्थिरामिन्द्रियधारणाम् = इन्द्रिय-मन बुद्धि की शान्तावस्था को। योगं इति मन्यन्ते = योग कहा जाता है। तदा = तब। अप्रमत्तः = प्रमाद रहित साधक। योग = इस प्रकार का योग। प्रभवाप्ययौ = उत्पत्ति और विनाश।

भावार्थ—विषयो को परित्याग कर जब पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ अन्तर्मुख हो जाती है, बुद्धि भी चेष्टाशून्य हो जाती है, उस स्थितप्रज्ञ स्थिति को विद्वान् लोग परम गति कहते हैं।

उस गति को योग कहा गया है जिसमे इन्द्रियाँ स्थित हो जाती है। अगर साधक सावधान रहता है तो उसे सिद्धि मिलती है अन्यथा उसका पतन हो जाता

है । यही कारण है कि योग को सिद्धि और विनाश का कारण कहा गया है । यहाँ निर्विकल्प समाधि और सविकल्प समाधि के अन्तर की ओर संकेत है ।

10 When the five organs of knowledge and the mind take rest together and the power of thinking stops to work then the supreme state comes

11 That atate when the senses are controlled is called Yoga. Then the yogi becomes watchful for the growth and decay of yoga is both possible alike.

नैव वाचा मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥ १२ ॥
अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥ १३ ॥

पदच्छेद—न, एव, वाचा, न मनसा, प्राप्तुम्, शक्य, न चक्षुषा । अस्ति इति, ब्रुवतः, अन्यत्र, कथम्, तद्, उपलभ्यते । अस्ति, इति, एव, उपलब्धव्यः, तत्वभावेन, च, उभयो. । अस्ति, इति, एव, उपलब्धस्य, तत्वभावः, प्रसीदति ।

अन्वय – (परमात्मा) न वाचा एव न चक्षुषा न मनसा प्राप्तु शक्य । अस्ति इति ब्रुवत अन्यत्र तत् कथम् उपलभ्यते ? उभयोः तत्त्वभावेन अस्ति इति एव उपलब्धव्यः अस्ति इति उपलब्धस्य तत्त्वभाव प्रसीदति ।

[शा०] नैव वाचा न मनसा न चक्षुषा नान्यैरपीन्द्रियै प्राप्तु शक्यत इत्यर्थः । तथापि सर्वविशेषरहितोऽपि जगतो मूलमित्यवगतत्वादस्त्येव कार्यप्रविलापनस्यास्तित्वनिष्ठत्वात् । तथा हीद कार्य सूक्ष्मतारतम्यपारम्पर्येणानुगम्यान सद्बुद्धिनिष्ठामेवावगमयति । यदापि विषयप्रविलापनेन प्रविलाप्यमाना बुद्धिस्तदापि सा सत्यप्रत्यगर्भैव विलीयते । बुद्धिर्हि न प्रमाण सदसतोर्याथात्म्यावगमे ।

मूलं चेज्जगतो न स्यादसदन्वितमेवेद कार्यमसदित्येव गृह्येत न त्वेतदस्ति सत्सदित्येव तु गृह्यते, यथा मृदादिकार्य घटादिमृदाद्यन्वितम् । तस्माज्जगतो मूलमात्मास्तीत्येवोपलब्धव्यम् । कस्मात् ? अस्तीति ब्रुवतोऽस्तित्ववादिन आगमार्थानुसारिण श्रद्दधानादन्यत्र नास्तिकवादिनि नास्ति

जगतो मूलमात्मा निरन्वयमेवेद कार्यमभावान्तं प्रविलीयत इति मन्यमाने विपरीतदर्शिनी कथं तद्ब्रह्म तत्त्वत उपलभ्यते न कथञ्चनोपलभ्यत इत्यर्थ. ।

अस्तीत्येवात्मोपलब्धव्य सत्कार्यो बुद्ध्याद्युपाधि । यदा तु तद्रहितोऽविक्रिय आत्मा कार्यं च कारणव्यतिरेकेण नास्ति 'वाचारम्भण विकारो नाभधेय मृत्तिकेत्येव सत्यम्' (छा० ६।१।४) इति श्रुतेस्तदा यस्य निरुपाधिकस्यालिङ्गस्य सदसदादिप्रत्ययविषयत्ववर्जितस्यात्मन तत्त्वभावो भवति तेन च रूपेणात्मोपलब्धव्य इत्यनुवर्तते। तत्राप्युभयो· सोपाधिकनिरुपाधिकयोरस्तित्वतत्त्वभावयो निर्धारणार्था षष्ठी-पूर्वमस्त त्येवोपलब्धस्यात्मनः सत्कार्योपाधिकृतास्तित्वप्रत्ययेनोपलब्धस्य इत्यर्थ । पश्चात्प्रत्यस्तमितसर्वोपाधिरूप आत्मनस्तत्त्वभावो विदित विदिताभ्यामन्योऽद्वयस्वभाव 'नेति नेति' (बृह० २।३।६।, ९।२६) इति 'अस्थूलमनणवह्रस्वम्' (बृह ३।८।८।) 'अदृश्येऽनात्म्येऽनुरुक्तेऽनिलयने. (ते० २।७।१) इत्यादिश्रुतिनिर्दिष्टः प्रसीदत्यभिमुखी भवति। आत्मप्रकाशनाय पूर्वमस्तीत्युपलब्धवत् इत्येतत् ।

संस्कृत व्याख्या केषाञ्चिदपि इन्द्रियाणाम् विषया भावान् तम् परमात्मानं वाचा मनसा चक्षुषा वा न प्राप्तुं शक्य , यतो अस्तीति व्यपदेश्यत्वात् । अस्तीति एव ब्रुवतो अन्यत्र कथं तद् उपलभ्यते—

तत्व भावयति इति—तत्वभावस्तेन च तत्वभावेनान्त: —करणेन परमात्माऽस्तीत्येव, उपलब्धव्य ज्ञातव्य. (बोद्धव्य:) उभयोः हेत्वो.-उभाभ्यां हेतुम्पामितिति यावत् उभाभ्या शब्दमनोरूपाभ्यामस्तीत्येवोपलब्धस्य ज्ञातवतः पुरुषस्य तत्वभाव: अन्त·करणं (मन:) प्रसीदति--प्रसन्न भवति रागादिदोषरहितं भवतीत्यर्थ· ।

हिन्दी शब्दार्थ—न एव वाचा = न वह (आत्मा) वाणी से । न मनसा = न मन से । न चक्षुषा = न नेत्रो से । प्राप्तुं शक्य. = प्राप्त किया जा सकता है । अस्ति इति ब्रुवत· = वह है कहने वाले द्वारा । उपलभ्यते = प्राप्त होता है । अन्यत्र = इसके विपरीत । तत् कथम् = वह (आत्मा) कैसे प्राप्त हो सकता है ।

अस्ति = आत्मा है । इति एव = इस प्रकार । उपलब्धव्य = प्राप्ति का विषय है । तत्त्व-भावेन = आत्मा की सत्ता और उसके गुणो के सम्यक् ज्ञान से । उपलब्धव्य. = ज्ञातव्य है । उभयो. = दोनो ज्ञानो मे । अस्ति = है ।

उपलब्धस्य = ज्ञानवान के। तत्त्वभाव = आत्मा का यथार्थ स्वरूप। प्रसीदति = प्रगट होता है।

भावार्थ—आत्मज्ञान केवल वाणी-मन-नेत्रो के बाहरी ज्ञान से प्राप्त नही किया जा सकता। समस्त चैतन्य के कारणभूत इस आत्मा की सत्ता स्वीकार करने वाला साधक ही इसका साक्षात्कार कर सकता है, इसके विपरीत आचरण करने वाला नास्तिक इसे कैसे पा सकता है। अर्थात किसी प्रकार प्राप्त नही कर सकता।

आत्मा की सत्ता तथा उनके गुणो का ज्ञान इन दोनो मे जो साधक आस्थावान है, उसे तत्त्वभाव अनायास ही मिल जाता है। उपनिषद्करा का आशय पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि आत्मानुभूति के लिये सर्वप्रथम सात्त्विकश्रद्धा से युक्त परमतत्त्वरूपी परमात्मा में आस्तिकता की आवश्यकता है। अत वह है ऐसा मानना परमावश्यक है। बात भी सत्य है सविकल्पक ज्ञान, निर्विकल्पक ज्ञान के बिना संभव कैसे होगा।

1-. The self can not be obtained neither through speech nor through mind. He can not be seen through the eyea too Hour can he be then known except bo tuose who accept his existence.

13 The soul is to be realised only by having the faith and real sense bothen his existence Those who accept that the soul exists, the real sensc itself come to themselves.

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १४ ॥
यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम् ॥ १५ ॥

पदच्छेद—यदा, सर्वे, प्रमुच्यन्ते, कामा, ये, अस्य, हृदि, श्रिता। अथ, मर्त्यः, अमृतो, भवति, अत्र, ब्रह्म, समश्नुते।

यदा, सर्वे, प्रभिद्यन्ते, हृदयस्य, इह, ग्रन्थयः। अथ, मर्त्यः अमृत, भवति, एतावत्, अनुशासनम्।

अन्वय—यदा अस्य हृदि श्रिता सर्वे कामा प्रमुच्यन्ते अयं मर्त्यः अमृतः भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते। यदा इह हृदयस्य सर्वे ग्रन्थय प्रभिद्यन्ते अथ मर्त्यः अमृत भवति। एतावत् ही अनुशासनम्।

[शा०] यदा यस्मिन्काले सर्वे कामा कामयितव्यस्यान्यस्याभावात्प्रमुच्यन्ते विशीर्यन्ते येऽस्य प्राक्प्रतिबोधाद्विदुषो हृदि बुद्धौ श्रिता आश्रिता। बुद्धिर्हि कामानामाश्रयो नात्मा। 'काम सकल्प' (बृह० १।५।३) इत्यादिश्रुत्यन्तराच्च। अथ तदा मर्त्यः प्राक्प्रबोधादासीत्स प्रबोधोत्तरकालमविद्याकामकर्मलक्षणस्य मृत्योर्विनाशादमृतो भवति। गमनप्रयोजकस्य मृत्योर्विनाशाद्गमनानुपपत्तेरत्रेहैव प्रदीपनिर्वाणवत्सर्वबन्धनोपशमाद् ब्रह्म समश्नुते ब्रह्मैव भवतीत्यर्थ.

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते भेदमुपयान्ति विनश्यन्ति हृदयस्य बुद्धेरिह जीवत एव ग्रन्थयो ग्रन्थिवद् दृढबन्धनरूपा अविद्याप्रत्यया इत्यर्थ.। अहमिद शरीरं ममेदं धनं सुखी दु खो चाहमित्येवमादिलक्षणास्तद्विपरीतब्रह्मात्मप्रत्ययोपजननाद् ब्रह्मैवाहमस्मि असंसारीति विनष्टेष्वविद्याग्रन्थिषु तन्निमित्ता कामा मूलतो विनश्यन्ति। अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्येतावदेवैतावन्मात्र नाधिकमस्तीत्याशङ्का कर्तव्या। अनुशासनमनुशिष्टिरुपदेश सर्ववेदान्तानामिति वाक्यशेष।

यदा पुरुषस्य सर्वे कामा —विषयविषयकमनोरथाः ये अस्य हृदि—अन्त.करणे श्रिता. स्थिताः प्रमुच्यन्ते--शान्ता भवन्ति तदा अथ—अनन्तरमेव अयम् मर्त्यः उपासको, अमृतो भवति अर्थात् पूर्वोत्तरकृताघनिवृत्त भवति -तदाऽत्रैव ब्रह्म समश्नुते--अनुभवतीत्यर्थः।

संस्कृत व्याख्या—युक्तमेवार्थं सादरेणानुशासनेनोपदेष्टव्यरूपेण कथयन् उपसंहार करोति—यदेति--यस्यामवस्थायाम्, अस्योपासकस्य हृदयस्य सर्वे—ग्रन्थयः दोषा रागद्वेष्यादयः प्रभिद्यन्ते--विदीर्यन्ते, अथ--अनन्तरमेव उपासकोऽमृतो भवति, एतावद् अनुशासनम्--अनुशासनीयम्-उपदेष्टव्यम्।

हिन्दी शब्दार्थ—ये कामाः = जो वासनाएँ। अस्य हृदि श्रिताः = इस (साधक) के हृदय में वर्तमान है। सर्वे यदा प्रमुच्यन्ते = जब सभी छूट जाती हैं। अथ = इसके बाद। मर्त्यः अमृत. भवति = मनुष्य बन्धनमुक्त हो जाता है।

इह = इस जीवन में। यदा हृदयस्य ग्रन्थयः = हृदय की ग्रन्थियाँ। प्रभिद्यन्ते = सुलझ जाती है। अथ = इसके बाद। मर्त्यः = मनुष्य। अमृतो भवति = अमर हो जाता है। एतावद् = इतना। अनुशासनम् = उपनिषद् की आज्ञा (आदेश) है।

भावार्थ—हृदयगत सभी काम्य कर्मों के नष्ट होने पर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और इसी अवस्था में उसे ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। तात्पर्य स्पष्ट है कि जीवन्मुक्ति और ब्रह्म की प्राप्ति के लिये कामनाओं का त्याग आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।

जब जीवित अवस्था में ही ग्रन्थि के समान अविद्या-बुद्धि का नाश हो जाता है तथा तन्मूलक कामनाओं का संहार हो जाता है तब साधक अमरपद पा जाता है, क्योंकि उसे 'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध हो जाता है। बस, यही सभी वेदान्तों का उपदेश है।

14 When all the desires living in a mortal's heart are killed, he becomes immortal and attain Brahman here

15. When all the bondages of heart are destroyed here a mortal becomes immortal. This is the teaching (of all the Upanisads)

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यास्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥१६॥

पदच्छेद—शतम् च, एका, च, हृदयस्य, नाड्यः तासां, मूर्धानम्, अभिनिःसृता, एका। तया, ऊर्ध्वम्, अयन्, अमृतत्वम्, एति विष्वङ्, अन्या, उत्क्रमणे, भवन्ति।

अन्वय—हृदयस्य शतं च एका च नाड्यः। तासाम् एका मूर्धानम् अभिनिःसृता। तया ऊर्ध्वम् आयन् (जीवः) अमृतत्वम् एति। अन्या उत्क्रमणे विष्वक् भवन्ति।

शा) शतं च शतसंख्याका एका च सुषुम्ना नाम पुरुषस्य हृदयाद्विनिःसृता नाड्यः शिरास्तासां मध्ये मूर्धानं भित्त्वाभिनिःसृता निर्गता सुषुम्ना नाम। तयान्तकाले हृदय आत्मानं वशीकृत्य योजयेत्। तया नाड्योर्ध्व-

मुपर्यायन्गच्छन्नादित्यद्वारेणामृतत्वममरणधर्मत्वमापेक्षिकम्। 'आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्व हि भाव्यते' (वि० पु० २।८।९७) इति स्मृते ब्रह्मणा वा कालान्तरेण मुख्यममृतत्वमेति भुक्त्वा भोगाननुपमान्ब्रह्मलोकगतान् । विष्वङ्नानाविधगतयोऽन्या नाड्य उत्क्रमणे निमित्त भवन्ति संसारप्रतिपत्यर्था एव भवन्तीत्यर्थ ।

संस्कृत व्याख्या—हृदयस्य-हृदयदेशे विद्यमाना नाड्य प्रधानतया शतश्चैका च-एकशतसंख्याका: सन्ति, तासां मध्ये एका सुषुम्ना नाम्नी नाडी मूर्धानमभिनि सृता सैव ब्रह्मनाडी इत्युच्यते । तया-नाड्या, ऊर्ध्वं-लोकं अयन्-गच्छन्-अमृतत्व--ब्रह्मलोकम एति -प्राप्नोति तदा ब्रह्मप्राप्तिर्भवति, इत्यर्थ:, अन्यास्तु नाड्य:, विष्वग्-गतय: सन्ति तयोत्क्रमणे- ऊर्ध्वंगमने नानाविधससारमार्गोत्क्रमणा युज्यन्ते इत्यर्थ ।

हिन्दी शब्दार्थ—हृदयस्य शत च एका च नाड्य: = हृदय की एक सौ एक नाडियाँ है । तासाम् = उनमे से । एका मूर्धानम् = एक (सुषुम्ना शिर को ओर । अभिनि सृता = निकलती है । तया = उसके द्वारा । उर्ध्वमायन् = प्राणो को ब्रह्मरन्ध्र का ओर ले जाता हुआ । अमृतत्त्वम् एति = अमरत्व को प्राप्त करता है । उत्क्रमणे = प्राण त्याग मे । अन्या: = दूसरी सौ नाडियाँ । विष्वङ् भवन्ति = अमरत्व से भिन्न गतियो का कारण होती है ।

भावार्थ—हृदय मे एक सौ एक नाडिया है उनमे सुषुम्ना नाडी केवल ब्रह्मरन्ध्र की ओर गयी है जिसका सहायता से साधक अमरत्व लाभ करता है । अन्य सौ नाडियाँ विभिन्न मार्गो की ओर उन्मुख रहती है, फलत: साधक को बार-बार ससार मे आना पडता है ।

16 The heart has one hundred and one nerves in number of them one goes out by piercing through the head If one goes up through this nerve gets immortality and if he chooses the nerves having different directions becomes mortal.

अंगुष्ठमात्र: पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्ट: ।
तं स्वाच्छरीरात् प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण ।
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥ १७ ॥

पदच्छेद—अङ्गुष्ठमात्र:, पुरुष , अन्तरात्मा सदा, जनानाम्, हृदये सन्निविष्ट । तम्, स्वात्, शरीरात्, प्रवृहेत्, मुञ्जात्, इव, वा, इषीकाम् धैर्येण, तम्, विद्यात्, शुक्रम्, अमृतम्, तम् विद्यात्, शुक्रम्, अमृतम् ।

अन्वय—अगुष्ठमात्र: पुरुष. अन्तरात्मा सदा जनाना हृदये सन्निविष्ट । मुञ्जात् इषीकाम् इव तं स्वात् शरीरात धैर्येण प्रवृहेत् । त शुक्रम् अमृत विद्यात् ।

[शा०]—अङ्गुष्ठमात्र पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनाना सम्बन्धिनि हृदये सनिविष्टो यथाव्याख्यातस्त स्वादात्मीयाच्छरीरात्प्रवृहेदुद्यच्छेन्निकर्षेत्पृथक्कुर्यादित्यर्थ: । किमिवेत्युच्यते मुञ्जादिव इषीकामन्तस्था धैर्येणाप्रमादेन । त शरीरान्निष्कृष्ट चिन्मात्र विद्याद्विजानीयाच्छुक्रममृत यथोक्तं ब्रह्मेति । द्विर्वचनमुपनिषत्परिसमाप्त्यर्थमितिशब्दश्च ।

संस्कृत व्याख्या—पूर्वं शरीरान्तर्वर्तिहृदयदेशे अङ्गुष्ठमात्रप्रमाण. जीवात्मन स्थिति: उक्त: अधुना तु अङ्गुष्ठमात्र पुरुष , अन्तरात्मा अन्तर्यामी सदा जनानाम् हृदये-हृदयदेशे सन्निविष्ट--प्रविश्य स्थित -पूर्वोक्तस्तु नियम्य: धार्य: शेषश्च, अय तु नियन्तृत्वधारकत्वशेषत्वादिना ततो विलक्षण इत्यर्थ: तम्--परमात्मानम् स्वात् शरीरात्—स्वस्य शरीर सम्बधिन आत्मन. प्रवृहेत्--पृथक्त्वेन विविच्य विलक्षण जानीयात्, अत्रोदाहरणम् मुञ्जाद् तृणविशेषात्--तन्मध्यभागे विद्यमान द् इषीकाद् इव । इषीक-तन्मध्यस्थ=तृणम् -यथा मुञ्जाद् भिन्न: तथा जीवात्मन परमात्मापि भिन्नतया जनायात् धैर्येण-ज्ञानकौशलेनेत्यादि पूर्वेणान्वय: । त शुक्रम्-वीर्यवत्तरम्, अमृतत्वम्, च विद्यात्- जानीयात् । द्विर्वचनम्-अत्र समाप्ति सूचनार्थम् ।

हिन्दी शब्दार्थ—अंगुष्ठमात्र--अगूठे के परिमाण वाला । अन्तरात्मा पुरुष =हृदयवासी जीवात्मा । जनानाम्=जीवो के । हृदये = हृदय में । सन्निविष्ट = स्थित । तम् = उस आत्मा को । स्वात शरीरात् = अपने शरीर से । मुञ्जात इषिकाम् इव=मूज के सीक के समान । धैर्येण प्रवृहेत्=सयम से पृथक् करे । तम शुक्रम् अमृतम्=उस आत्मा को चैतन्य और अमर । विद्या =जाने ।

भावार्थ—(अपने शरीर के) अगूठे के बराबर अन्तरात्मा सभी जीवों मे सदा रहता है । साधक मूज के सीक के समान उस आत्मा को शरीर से विवेकपूर्वक पृथक् करे । शरीर से निकले हुए उस चिन्मय को अमृतस्वरूप ब्रह्म जाने, अमृत जाने ।

17 The Purush of the size of a thumb the inner self lives always in the hearts of all the creatures one should firmly withdraw him from one's body like a stalk from Munja grass Know Him pure and immortal Know Him pure and immortal

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् ।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ।१८।

पदच्छेद - मृत्युप्रोक्ताम्, नचिकेतः, अथ, लब्ध्वा, विद्याम्, एताम् योग-विधिम्, च कृत्स्नम् ब्रह्मप्राप्त , विरजः, अभूत्, विमृत्यु , अन्य. अपि एवम्, यः वित, अध्यातमम् एव ।

अन्वय—अथ मृत्युप्रोक्ता एता विद्या कृत्स्न योगविधि च लब्ध्वा नचिकेतः विरजः विमृत्यु ब्रह्मप्राप्तः अभून । अन्यः अपि य. अध्यात्मम् वित् एवम् एव (भवति) ।

[शा०] मृत्युप्रोक्ता यथोक्तामेता ब्रह्मविद्या योगविधि च कृत्स्नं समस्तं सोपकरण सफलमित्येतत्, नचिकेता वरप्रदानान्मृत्योर्लब्ध्वा प्राप्येत्यर्थः, किम् ? ब्रह्मप्राप्तोऽभून्मुक्तोऽभवदित्यर्थ । कथम् । विद्याप्राप्त्या विरजो विगतधर्माधर्मो विमृत्युर्विगत कामाविद्यश्च सन्पूर्वमित्यर्थ । न केवल नचिकेता एवान्योऽपि नचिकेतोवदात्मविदध्यात्ममेव निरुपचरितं प्रत्यक्स्वरूप प्राप्य तत्त्वमेवेत्यभिप्राय , नान्यद्रूपमप्रत्यग्रूपम् । तदेवमध्यात्ममेवमुक्तप्रकारेण वेद विजानातीत्येव वित्सोऽपि विरज सन्ब्रह्मप्राप्त्या विमृत्युर्भवतीति वाक्यशेषः ।

संस्कृत व्याख्या—अथ-अनन्तरम् मृत्युना यमेन प्रोक्ताम्--कथिताम्-एताम्-विद्याम्- ब्रह्मविद्याम् कृत्स्नम्--सम्पूर्णम्- योगविधिम्, च- पञ्चेत्यादि पूर्वोक्त योग-विधानं च लब्ध्वा प्राप्य नचिकेतो--नचिकेता ब्रह्मप्राप्त, विरज --कल्मषरहितः विमृत्यु--विगतमृत्युः--आवागमनरूपासंसृतिमतिक्रान्तः इत्यर्थ अतः एतादृशः अन्योऽपि य एवं वेत्ति नचिकेता इवात्मम् -आत्मान विदध्य--प्राप्य--कृतकृत्यो भवतीत्यर्थः ।

हिन्दी शब्दार्थ—नचिकेत.=वाजश्रवस का पुत्र, कठोपनिषद् कथानायक। मृत्युप्रोक्ता एता विद्याम्=यम द्वारा कही गयी इस आत्मविद्या को। कृत्स्नम् योगविधिम्=सम्पूर्ण योग प्रक्रिया को। लब्ध्वा=जानकर। विरज.=धर्म-अधर्म से मुक्त। विमृत्यु.=मृत्यु के बन्धन से मुक्त होकर। ब्रह्म प्राप्त: अभूत्=ब्रह्म को प्राप्त कर गया। अन्य अपि य.=और भी जो कोई। अध्यात्मम् वित्=इस आत्मतत्व को जान लेता है। एव=उसी प्रकार जीवन्मुक्त हो जाता है।

भावार्थ—भगवान् यम द्वारा प्रतिपादित इस ब्रह्म--विद्या तथा सम्पूर्ण योग विधियो को जानकर नचिकेता दोषरहित होकर ब्रह्ममय हो गये। अन्य भी जो साधक अध्यात्मतत्व को नचिकेता की तरह जान लेता है उसे भी ब्रह्मलोक का सायुज्य प्राप्त होता है।

विशेष —नचिकेता के तीन प्रमुख प्रश्नो तथा विभिन्न शंकाओ के समाधान के साथ ग्रन्थकार ने अन्त मे आत्मविद्या के अर्थवाद का वर्णन भी कर दिया है, क्योकि लाभात्मक परिणाम की जानकारी के अभाव में मानव की उस ओर प्रवृत्ति नही होती चाहे ज्ञान कितना भी उत्तम हो।

इस अध्यात्मविद्या प्रतिपादक ग्रन्थ की समाप्ति पर आचार्य और अध्येता की कल्याण कामना हेतु शान्ति पाठ ॐ सहनाववतु-इत्यादि का आवृत्ति की गई है। पाठक इसकी व्याख्या आदि को ग्रन्थ के आरम्भ में ही देखने को कृपा करें।

18 Nachiketas having got knowledge as well as the whole proces of yoga imparted by death became free from all impurities and death. Thus the others, too will obtain Brahman who know the inner self.

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै ॥१९॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ग्रन्थ समाप्ति

परिशिष्ट

कठोपनिषद् में युक्त मन्त्रों की आकारादि क्रम से सूची

—: ० :—